आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि

हरिवंशराय 'बच्चन'

•

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

मूल्य : 4 00

सातवा परिवर्धित सस्करण 1971, © राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
न्यू मदन हाफटोन क०, दिल्ली, मे मुद्रित
BACHCHAN (Selected Poems) Edited by Chandra Gupta Vidyalankar
Rs. 3 00

जी

व

नी

डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन'

परिचय

(पहले सस्करण से)

हिन्दी कविता के क्षेत्र मे आज पाँच पीढियाँ एकसाथ काव्य-सृजन कर रही हे। प्रथम महायुद्ध मे लेकर आज तक हिन्दी कविता के क्षेत्र मे जैसे पूरी क्रांति हो चुकी है। वस्तु, शैली, कथ्य, रुचि, क्षेत्र—इन सव मे भारी और दूरगामी परिवर्तन आए है। निरन्तर बदलती परिस्थितियो के इस युग मे कुछ कवि उल्का के समान चमके और उल्का ही के समान बुझ भी गए। कुछ कवि धीरे-धीरे चमक पकडते गए और भारी सघर्ष के बाद उन्हे मान्यता मिली। पर बच्चन का प्रारम्भ एक उल्का के समान हुआ और उनकी चमक न केवल स्थायी रही, अपितु उसकी उज्ज्वलता उत्तरोत्तर बढती चली गई।

सन् १९३२ की बात है। हरिवशराय नाम का पच्चीस वर्ष का एक युवक पश्चिमी उत्तर प्रदेश की जिला कचहरियो मे 'पायोनीयर' के सवाददाता के रूप मे दिखाई दिया करता था। लम्बे घुँघराले बाल, इकहरा शरीर, दरमियाना कद, गेहुआँ रग, दार्शनिक की-सी गम्भीर मुद्रा, घनी भँवो से भरी उन्नत पेशानी के नीचे गहराई मे गई हुई शराफत-भरी आँखे, जिनपर मोटे फ्रेम का चश्मा पड़ा रहता था। यह युवक कही टिककर नही रहता था। दिन कचहरी मे और रात किसी होटल या ट्रेन मे। जी लगाने के लिए हमारे देश की अदालतो मे काफी सामग्री विद्यमान रहती है, पर इस युवक को उस सबमे कोई दिलचस्पी नही थी। उसके पास दो नोट बुके रहती थी। एक अखबारी नोट बुक, जिसमे अदालतो की कार्रवाई के नोट लिए जाते थे, और दूसरी निजी नोट बुक, जो उस युवक की दिन-रात की वास्तविक साथी थी। इस नोट बुक मे वह अपने हृदय की प्यारी कल्पनाएँ छन्दोबद्ध रूप मे दर्ज किया करता था। युवक का गला सुरीला था। होटल के कमरे मे और स्नानागार मे वह अपनी पक्तियाँ गुनगुनाया करता।

उसकी कृतियाँ उसे अकेलापन अनुभव न होने देती। 'पायोनीयर' के अधिकारी उसके कार्य से सतुष्ट थे और साधारण ढग मे चल रही अपने जीवन की गाडी की रफ्तार से जैसे हरिवशराय भी असतुष्ट नही था।

उसी जमाने की एक प्रात काल मुरादाबाद के एक छोटे-से होटल मे स्नान करते हुए हरिवशराय अपनी यह निम्नलिखित पंक्ति गुनगुनाने लगा

'अरुण कमल कोमल कलियो की प्याली, फूलो का प्याला।' (मधुशाला) कि अचानक किसी अन्त प्रेरणा से इसी पक्ति को वह एक नई तर्ज़ मे गाने लगा। यह नई तर्ज उसे इतनी पसन्द आई कि वह विभोर हो उठा और स्नानागार ही मे खुलकर गाने लगा। यह उसकी अपनी ईजाद थी। सारा दिन वह उक्त पक्ति इसी नई तर्ज़ मे गाता या गुनगुनाता रहा। यहाँ तक कि अदालत के एक कोने मे खड़े रहकर भी।

और इस नई तर्ज के आविष्कार के कुछ ही दिनो के बाद दिन-रात के सफर की इस नौकरी से त्यागपत्र देकर हरिवशराय इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले 'अभ्युदय' नामक पत्र के प्रबन्ध विभाग मे काम करने लगा। उन्ही दिनो इलाहाबाद की छोटी-छोटी मजलिसो मे पहली बार लोगो ने उस युवक को 'बच्चन' के रूप मे जाना और उसकी ईजाद की हुई तर्ज मे उसके ताजगी-भरे काव्य को दिलचस्पी से सुना। बच्चन इलाहाबाद मे शीघ्रता से लोकप्रिय होने लगा।

दो ही महीनो के बाद दिसम्बर, १९३३ मे बनारस विश्वविद्यालय मे एक बडा कवि-सम्मेलन हुआ। विशाल हिन्दी जगत मे तब तक बच्चन को और उसकी कविता को अधिक लोग नही जानते थे, पर उसकी 'मधुशाला' और उसकी नई तर्ज़ की ख्याति कुछ विद्यार्थियो द्वारा बनारस तक भी पहुँच गई थी। बच्चन को निमन्त्रण मिला। कितने ही दिग्गज कवि बनारस विश्वविद्यालय के उस कवि सम्मेलन मे उपस्थित थे। बच्चन तो अभी एकदम नये कवि थे। उन्हे सम्मेलन मे काफी पहले कविता पढने को कहा गया। पर 'मधुशाला' के दो पद सुनाकर ही जैसे बच्चन ने दिग्विजय कर ली। दो पद सुनाकर वह बैठ जाना चाहते थे, पर विद्यार्थियो के अनुरोध पर उन्हे तीसरा, फिर चौथा पद भी सुनाना पडा। उसके बाद वह बैठ गए, पर विद्यार्थी निरन्तर तालियाँ बजाते रहे। सभापति का अनुरोध भी उन्होने नही माना। विद्यार्थी सिर्फ बच्चन को सुनना चाहते थे, वे किसी और की कविता सुनने को तैयार ही नही थे। आखिर उनसे यह वायदा

किया गया कि बच्चन बनारस मे एक दिन और रुकेगे और दूसरे दिन केवल उन्हीकी कविता को सुनने के लिए सभा आयोजित होगी।

दूसरे दिन की सभा हिन्दी कवि-सम्मेलनो के इतिहास मे अविस्मरणीय है। वाइस चान्सलर से लेकर सभी उपाध्याय, अध्यापक और विद्यार्थी उस सभा मे उपस्थित थे। बीसियो विद्यार्थी अपनी कापियाँ लेकर आए थे। बच्चन अपनी नवाविष्कृत तर्ज मे 'मधुशाला' की रुबाइयाँ सुना रहे थे। श्रोता झूमते थे, सैकडो कठ बच्चन के साथ-साथ गाते थे और सैकडो हाथ उन रुबाइयो को नोट कर रहे थे। तीन ही दिनो मे बच्चन की ख्याति सम्पूर्ण हिन्दी जगत मे फैल गई।

कुछ कारणो से बच्चन ने 'मधुशाला' का प्रथम सस्करण स्वय प्रकाशित करने का निश्चय किया। उनके पास तब न कागज खरीदने के लिए पैसा था न छपाई के लिए। पर 'सुषमा निकुज' नामक एक प्रकाशन सस्था उन्होने स्थापित कर दी। छपाई की दरे पूछने के लिए वह एक प्रेस मे गए। प्रेस के मालिक ने अनुरोध करके बच्चन जी से 'मधुशाला' की कुछ रुबाइयाँ सुनी और कहा कि पाण्डुलिपि वह वही छोड जाएँ। पुस्तक की छपाई, कागज आदि के अनुमान वह उन्हे एक सप्ताह के भीतर पहुँचा देगा। कुछ ही दिन के बाद प्रेस का मालिक बच्चन जी के पास पहुँचा तो उसके पास छोटे आकार मे छपी मधुशाला की बीस कापियो का छोटा-सा बण्डल था। प्रेस के मालिक ने ये कापियाँ तथा कुछ करेन्सी नोट बच्चन जी के सामने रख दिए और कहा, " 'मधुशाला' की एक हजार कापियाँ मैने छापी थी। उनमे से बीस प्रतियाँ हाज़िर है। शेष नौ सौ अस्सी प्रतियाँ प्रेस ही से बिक गई है। उनकी बिक्री से जो रुपया मुझे मिला, उनमे से कागज, छपाई और जिल्दबन्दी के पैसे काटकर यह राशि मैं आपकी सेवा मे प्रस्तुत कर रहा हूँ।"

श्री हरिवशराय बच्चन का जन्म २७ नवम्बर, १९०७ के दिन इलाहाबाद मे मोहल्ला चक के एक मकान मे हुआ था। आज वह मकान विद्यमान नही है और उस स्थान पर से 'जीरो रोड' गुजर रही है। बचपन से इण्टर के प्रथम वर्ष तक बच्चन इसी मकान मे रहे। १९२६ मे जब वह इण्टर के द्वितीय वर्ष मे थे, तब उनका परिवार मोहल्ला चक से मुट्ठीगज चला गया। सन् १९२९ मे उन्होने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास की। बी० ए० मे

पाश्चात्य दर्शन, अंग्रेजी साहित्य और हिन्दी उनके विषय थे।

बच्चन जी का परिवार एक सम्मिलित परिवार था। उनके पिताजी 'पायोनीयर प्रेस' मे काम करते थे। बच्चन जी का एक छोटा भाई था और दो बहनें—एक उनसे बडी और दूसरी उनसे छोटी। अभी वह बी० ए० प्रथम वर्ष मे ही थे कि उनका विवाह कर दिया गया। उनकी पत्नी का नाम श्यामा था। १९३० मे बच्चन जी ने अंग्रेजी साहित्य मे एम० ए० प्रीवियस की परीक्षा पास की। उन्ही दिनो गाधी जी का सत्याग्रह आन्दोलन जोरो से चला। बच्चन जी ने युनिवर्सिटी छोड दी। वह नमक बनाने, चरखा कातने, गाँवो मे व्याख्यान देने और पिकेटिंग करने लगे। राष्ट्रीय जुलूसो मे गाने के लिए कुछ गीत भी उन्होने लिखे थे, जो लोकप्रिय हुए थे। पर कुछ ही महीनो के बाद परिवार का बोझ उनके लिए चिन्ता का विषय बन गया और उन्होने जीविकोपार्जन करने का निश्चय किया। उनके पिताजी के प्रयत्न से १९३२ मे उन्हे दैनिक 'पायोनीयर' मे जिला कचहरियो के सवाददाता का कार्य मिल गया। उन दिनो यह पत्र इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ करता था।

१९३३ के उत्तरार्द्ध मे बच्चन जी 'अभ्युदय' के सम्पादकीय विभाग मे सम्मिलित हो गए। १९३४ के प्रारम्भ से वह इलाहाबाद ही के अग्रवाल विद्यालय मे अध्यापक नियुक्त हुए। इस पद पर उन्होने तीन वर्ष कार्य किया। उनकी पत्नी श्यामा जी को अतडियो की तकलीफ थी, जो क्रमश. अतडियो की यक्ष्मा मे परिणत हो गई। बच्चन जी के वे दिन अत्यन्त कष्ट और चिन्ता मे बीते। सारा दिन वह विद्यालय मे पढाते और सारी रात अपनी बीमार पत्नी की परिचर्या किया करते। सन् १९३६ मे पटना मे श्यामा जी का आपरेशन हुआ और इसी आपरेशन मे १७ नवम्बर, १९३६ को उनका देहान्त हो गया। बच्चन के भावुक हृदय पर इस दुर्घटना से भारी आघात पहुँचा। लगभग ९ महीनो तक वह जैसे किसी अन्य ससार मे रहे। पूरे एक वर्ष तक उन्होने एक भी पंक्ति नही लिखी। उन दिनो वह लगभग एकाकी रहते थे, किसीसे अधिक बातचीत भी नही करते थे। अन्तस्तल मे एक टीस निरन्तर बनी रहती थी। रात को लेटते तो बहुत समय तक नीद न आती। इस दशा मे वह हवा का सगीत सुनते तारो से बातें करते और निस्तब्ध निशीथ को पहचानने का, उससे परिचय बढाने का प्रयत्न करते। श्यामा जी के देहावसान के ३७० दिन बाद २२ नवम्बर, १९३७ को

उन्होने 'निशा निमन्त्रण' की प्रथम पक्ति लिखी : "दिन जल्दी-जल्दी ढलता है।"

जुलाई, १९३७ मे मुख्यत परिस्थितियाँ बदल डालने के ख्याल से वह पुन: इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे एम० ए० के द्वितीय वर्ष के विद्यार्थी के रूप मे भरती हो गए। सन् १९३८ मे एम० ए० कर लेने के बाद वह बनारस ट्रेनिंग कालेज मे प्रविष्ट हुए। वही उन्होने 'एकात सगीत' की रचना प्रारम्भ की। ट्रेनिंग का डिप्लोमा ले लेने के बाद, १९४० मे वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे ही स्नातकोत्तर अध्ययन करने लगे। इसी युग मे उन्होने 'आकुल अन्तर' और 'विकल विश्व' के कुछ गीतो की रचना भी की, जो बाद मे 'धार के इधर-उधर' मे सम्मिलित कर लिए गए।

उन दिनो वह लाहौर काफी आने-जाने लगे थे। २४ जनवरी, १९४२ को बच्चन जी का तेजी जी से विवाह हुआ। तेजी जी उन दिनो लाहौर के एफ० सी० कालेज मे मनोविज्ञान की अध्यापिका थी। यह विवाह पति-पत्नी दोनो के लिए बहुत शुभ और कल्याणकारी सिद्ध हुआ। विवाह से कुछ मास पहले बच्चन जी इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे ही अग्रेजी साहित्य के जूनियर लेक्चरर नियुक्त हो गए थे। इस समय तक उनकी ख्याति भारत-भर मे फैल चुकी थी। विद्यार्थियो मे तो वह विशेष रूप से लोकप्रिय हो गए थे और सैकडो नये हिन्दी कवि उनका अनुकरण करने लगे थे।

परिस्थितियाँ बदल गई थी और बच्चन जी की कविता मे एक नया दौर प्रारम्भ हो गया था। 'प्रणय पत्रिका' की भूमिका मे उन्होंने ठीक ही लिखा है—

'लेकिन मै तो बेरोक सफर मे जीवन के,
इस एक और पहलू से होकर निकल चला।'

बच्चन हालावाद को प्रतीकात्मक रूप मे हिन्दी काव्य मे लाए थे। उनकी कविता विद्रोह और नवजीवन की यौवनोचित भावनाओ का सन्देश लिए हुई थी। इसके साथ ही उन्होने अपनी रचनाओ द्वारा हिन्दी कविता मे असाधारण माधुर्य और सहज भाव का समावेश किया था, इससे प्रारम्भ से ही वह विद्यार्थियो और नवयुवको मे अत्यन्त लोकप्रिय हो गए थे। श्यामा जी की बीमारी के दिनो मे और उनके देहावसान के बाद उनके जीवन मे एक गहरी वेदना का दौर प्रारम्भ हुआ। पर कवि बच्चन ने अपनी असीम साधना से इस भारी चोट को अपने काव्य का जबरदस्त उपादान बना लिया। 'निशा निमन्त्रण', जिसे मैं भार-

तीय काव्य की एक अमर रचना मानता हूँ, उन्ही दिनो लिखा गया। 'आओ सो जाएँ, मर जाएँ' जैसी कविताएँ बच्चन जी की उन दिनो की मनोदशा का प्रतीक है। उसी युग मे लिखी गई बच्चन जी की एक कविता है

आओ, हम पथ से हट जाएँ।
युवती और युवक मदमाते
उत्सव आज मनाने आते,
लिए नयन में स्वप्न, वचन मे हर्ष, हृदय मे अभिलाषाएँ।
आओ, हम पथ से हट जाएँ।
इनकी इन मधुमय घडियो में,
हास लास की फुलझडियो मे,
हम न अमंगल शब्द निकालें, हम न अमगल अश्रु बहाएँ।
आओ हम पथ से हट जाएँ।
यदि इनका सुख सपना टूटे,
काल इन्हे भी हम-सा लूटे
धैर्य बँधाएँ इनके उर को हम पथिको की करुण कथाएँ।
आओ, हम पथ से हट जाएँ। (निशा निमत्रण)

इस दौर की अतिम कृति थी 'आकुल अन्तर।' बच्चन जी का कथन है, " 'निशा निमन्त्रण' मे जिस अवसाद की छाया उतरी थी, उसके अन्तिम और सघनतम रूप को देखने के लिए मैं 'एकात सगीत' सुनता हुआ 'आकुल अन्तर' की गुहा मे पैठ गया। जहाँ अन्धकार सघनतम है वही प्रकाश की पहली किरण है। उसी के धुधले किन्तु निश्चित प्रकाश की ओर हाथ फैलाता हुआ मैं 'आकुल अन्तर' से निकलकर 'सतरगिनी' के आँगन मे पहुँच गया।"

('आकुल अन्तर', पृ० ३)

तेजी जी से विवाह के बाद उनके जीवन का वह दौर समाप्त हो गया। अब बच्चन जी ने जीवन मे एक नया अर्थ तलाश किया। 'बीत गई सो बात गई' जैसी सशक्त कविताएँ उन्होने लिखनी आरम्भ की, जिनमे नवजीवन और आत्म-विश्वास का असीम सन्देश था। बच्चन की वेदना भी कितनी सशक्त थी, इसका पता 'एकात सगीत' की कुछ कविताओ से चलता है, जहाँ वह बडी से बडी शक्ति को भी जैसे चुनौती देते है .

प्रार्थना मत कर मत कर, मत कर !
झुकी हुई अभिमानी गर्दन,
बँधे हाथ, नत-निष्प्रभ लोचन,
यह मनुष्य का चित्र नही है, पशु का है रे कायर !
प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर ! (एकात सगीत)

इस नये तथा उसके बाद आनेवाले विविध दौरो मे उन्होने 'हलाहल', बगाल का काल', 'मिलन यामिनी', 'खादी के फूल', 'प्रणय पत्रिका', 'आरती और अगारे' आदि सग्रहो की कविताओ का निर्माण किया।

१९५२ मे बच्चन जी अग्रेजी साहित्य मे डाक्टरेट प्राप्त करने के लिए कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय चले गए। वहाँ उन्होने महाकवि ईट्स के सम्बन्ध मे विशेष अध्ययन किया। आयरलैड जाकर वह ईट्स के घर मे ठहरे और कवि के पत्र-व्यवहार और उनके हाथ की लिखी सम्पूर्ण सामग्री का उन्होने गहराई से अध्ययन किया। इस अध्ययन का प्रभाव उनके काव्य पर भी स्पष्टत पडा। १९५४ मे डॉक्टरेट प्राप्त कर वह स्वदेश लौट आए। वापस आकर वह पुन. इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे अग्रेजी साहित्य पढाने लगे। सितम्बर, १९५५ मे वह भारतीय आकाशवाणी मे हिन्दी प्रोड्यूसर नियुक्त हुए। पर तीन ही महीनो के बाद उन्हे विदेश मन्त्रालय मे विशेषाधिकारी का पद स्वीकार करने का निमन्त्रण मिला। दिसम्बर, १९५५ मे वह इसी पद पर कार्य कर रहे है और आजकल नई दिल्ली मे विलिगडन क्रीसेण्ट के एक शान्त और सुन्दर बगले मे रहते है।

विदेश मे वापस आने के बाद बच्चन की रचनाओ मे भावो की सहज-स्वाभाविक अभिव्यक्ति की अपेक्षा अध्ययन और चिन्तन जनित काव्याभरण का प्राधान्य हो गया था। पर वह दौर भी बहुत समय तक नही चला। क्रमश. प्रतिभा, चिन्तन और अध्ययन— इन सबका एक सुन्दर समन्वय उनकी रचनाओ मे हो गया। 'बुद्ध और नाचघर' की बहुत-सी कविताएँ उन्होने कैम्ब्रिज मे लिखी थी। 'आरती और अगारे' आदि रचनाएँ उनकी नवीनतम कृतियाँ है।

इस बीच बच्चन जी ने विश्व साहित्य के कुछ अमर ग्रन्थो के प्रामाणिक अनुवाद का कार्य भी किया। शेक्सपियर का हिन्दी अनुवाद, विशेषत पद्य से पद्य मे, अत्यन्त दुस्साध्य कार्य है। बच्चन जी 'मैकबेथ' और 'ओथेलो' के सुन्दर अनुवाद कर चुके है। गीता जैसी लोकप्रिय अमर रचना का उन्होने अवधी मे अनुवाद

किया है। बच्चन जी के तत्त्वावधान मे 'मैकबेथ' तथा 'ओथेल्लो' के हिन्दी रूपान्तर दिल्ली मे सफलतापूर्वक अभिनीत हो चुके है। 'मैकेबेथ' के अभिनय मे श्रीमती बच्चन लेडी मैकबेथ की भूमिका मे अवतरित हुई थी और उनके अभिनय को बहुत पसन्द किया गया था। अपने कवि-जीवन का आरम्भ ही बच्चन जी ने उमर खैयाम की मधुशाला के अत्यन्त श्रेष्ठ अनुवाद से किया। इस लोकप्रिय अनुवाद के कितने ही सस्करण प्रकाशित हो चुके है।

बच्चन जी को पहली बार मैंने फरवरी १९३५ मे जापानी कवि नोगुची के सम्मान मे बुलाए गए कवि-सम्मेलन के अवसर पर कलकत्ता मे देखा था। तब तक मैने उनकी कोई कविता नही पढी थी। पर मित्रो से उनके बारे मे सुना काफी था। पहली भेंट औपचारिक थी। कलकत्ता के एक साधारण होटल मे, जहाँ कवियो को ठहराया गया था, वह चुपचाप रसगुल्लो के साथ चावल खा रहे थे। लाहौर से आने वाले किसी भी व्यक्ति को यह आहार विचित्र प्रतीत होता। उसपर बच्चन जी का चेहरा उस समय बहुत गम्भीर था। वह स्पष्टत चिन्ताग्रस्त प्रतीत हो रहे थे। श्री रामकुमार वर्मा कवियो से मेरा परिचय करवा रहे थे। शीघ्र ही हम लोग आगे बढ गए। कलकत्ता के विशाल कवि-सम्मेलन मे बच्चन ने 'आत्म-परिचय' शीर्षक प्रसिद्ध कविता पढी। कविता बहुत अच्छी है। पर बच्चन जी का 'मैं जग-जीवन का भार लिए फिरता हू' आदि आनुस्वारिक स्वर मे गाना मुझे पसन्द नही आया। बार-बार मुझे यह ख्याल आता था कि यह गा क्यो रहे है! शायद किसीने मुझपर यह प्रभाव डाल दिया था कि बच्चन जी की लोकप्रियता का रहस्य उनका गला है।

पर दूसरे दिन श्री भगीरथ कानोडिया के घर पर जो कवि-गोष्ठी हुई, उसने मुझे पूरी तरह बच्चन का कायल कर दिया। कायल ही क्या, प्रशसक बना दिया। बच्चन जी ने वहाँ कितनी ही शानदार रचनाएँ पढी, जिनमे मुझे सचमुच असाधारण नवीनता, ताजगी, प्राणवत्ता और निराला माधुर्य दिखाई दिया।

वे दिन एक तरहसे बच्चन की घोर तपस्याके दिन थे। बडा सम्मिलित परिवार, आर्थिक कठिनाइयाँ और बीमार पत्नी। बाहर भी काम, घर मे भी काम और उसपर एक बोझिल निरन्तर चिन्ता, जो नीद मे भी पीछा नही छोडती।

खिलनमर्ग (काश्मीर) मे साढे ग्यारह हज़ार फुट की ऊँचाई पर मैंने एक

चश्मा देखा है। सरदियो मे इस चश्मे पर बीसो फुट ऊँची और कठोर बरफ की परते जम जाती है। आए साल उस चश्मे पर से बडे-बडे एवेलान्श गुजर जाते है, पर यह चश्मा कभी एक क्षण के लिए भी बन्द नही हुआ, मन्द नही पडा। यह जीवनदायिनी जलधारा प्राणशक्ति के समान बरफ की चट्टानो को काटकर निरन्तर बहती रहती है। पत्थर की कठोर शिलाएँ उसे रोक नही पाई, तो बरफ के अम्बार उसे कहाँ रोक सकेंगे। बच्चन भी ठीक उसी तरह निरन्तर रस का, काव्य का और माधुर्य का कभी रुक न सकने वाला चश्मा है, जो अनुकूल या प्रतिकूल किसी भी तरह की परिस्थितियो मे सूखता नही है।

१९३९ मे जब बच्चन लाहौर मे मेरे यहाँ आकर ठहरे, उनके व्यक्तिगत जीवन का सबसे बडा तूफान निकल चुका था। पर उसका प्रभाव बाकी था। गरमियो का मौसम था। रात को अपने तिमजिले मकान की ऊँची छत पर हम लोग जब लेटते तो इधर-उधर की कुछ बातचीत के बाद बच्चन जी से अनुरोध होता था कि वह अपनी कुछ कविताएँ सुनाएँ। 'निशा-निमन्त्रण' हम सबको प्रिय था। 'निशा-निमन्त्रण' तथा 'एकान्त सगीत' की कविताएँ वह सुनाने लगते। बहुत जल्द समाँ बँध जाता और हम सब लोग कवि के साथ-साथ धीमी आवाज मे गुनगुनाने लगते। सम्पूर्ण वातावरण अत्यन्त माधुर्यपूर्ण बन जाता कि बच्चन एकाएक कविता पाठ बन्द कर देते और चुप्पी छा जाती। अत्यन्त गहरी चुप्पी। हम लोगो मे से कोई उस चुप्पी को तोडने का प्रयत्न न करता। चारो तरफ व्याप्त समयातीत उस गहरे सन्नाटे को तोडती हुई कवि के मुँह से एक पुकार-सी सुनाई देती—"ओ मा!!" यह पुकार स्पष्टत उनके अन्तस्तल से उठ रही होती। हम लोग तब भी चुप रहते। उसके बाद बच्चन जी पुन कविता-पाठ करने लगते और हम लोग पुन साथ-साथ गुनगुनाने लगते। फिर से माधुर्य-भरे काव्य-पाठ का समा बँध जाता। ऐसा कई बार होता। बच्चन के लिए वे दिन सचमुच महान साधना के दिन थे। आज उस बात को बाईस बरस बीत गए है, पर मै बच्चन के अन्तस्तल से उठने वाली "ओ माँ!" की उस पुकार को आज भी नही भूला हूँ।

उन दिनो बच्चन जी को अपनी ये पक्तियाँ विशेष प्रिय थी :

तट पर है तरुवर एकाकी,
नौका है सागर में,

अंतरिक्ष में खग एकाकी,
तारा है, अंबर मे
भू पर वन, वारिधि पर बेड़े,
नभ मे उडु-खग मेला,
नर-नारी से भरे जगत मे
कवि का हृदय अकेला !

(एकान्त सगीत)

समय सबसे बडा चिकित्सक है और क्रमश बच्चन जी के हृदय का घाव भी भर गया। १९४१ के बडे दिनो मे अत्यन्त नाटकीय-सी परिस्थितियो मे बच्चन जी का कुमारी तेजी मे परिचय हुआ, जो बहुत शीघ्र एक-दूसरे के प्रति गहरे आकर्षण मे परिणत हो गया। कुछ ही दिनो के बाद, जब बच्चन जीऔर तेजी जी के विवाह की घोषणा हुई तो उनके मित्रो को अपार हर्ष होना स्वाभाविक ही था।

तेजी जी जैसी क्रियाशील, समभदार और स्नेहमयी गृहिणी पाकर उनका जीवन सुव्यवस्थित हो गया। तेजी जी का स्वभाव जितना मधुर है, उनका कण्ठ भी उतना ही मधुर है। घर के काम-काज मे वह दक्ष है। उनके घर जाने ही किसी सुरुचिपूर्ण गृहिणी की सत्ता का आभास अनायास ही प्राप्त हो जाता है। मुझे स्मरण है, विवाह के बाद लाहौर से पूरी गृहस्थी का साजो-सामान इलाहाबाद ले जाने की व्यवस्था तेजी जी ने स्वय की थी। बच्चन जी तो मेहमान की तरह ट्रेन मे सवार हो गए थे।

सन् १९४४ की बात है। मै कलकत्ता जाते हुए दो दिनो के लिए इलाहाबाद मे बच्चन जी के घर पर ठहरा। महायुद्ध के उन दिनो मे सफर करनाएक मुसीबत बना हुआ था। कालका मेल की सभी श्रेणियॉ ठसाठस भरी हुई थी, जो सॉझ को इलाहाबाद पहुँचता है। मै खूब थकावट अनुभव कर रहा था। स्नान-भोजन मे रात के दस बज गए और उसके बाद हम लोग लॉन मे बैठ गए। मुझे नीद आ रही थी। पर बातचीत के सिलसिले मे मैने बच्चन जी से पूछा कि इन दिनो वह क्या लिख रहे है। बच्चन जी ने बताया कि हाल ही मे एक बहुत लम्बी कविता उन्होने लिखी है। साथ ही यह भी पूछा—"वह रचना सुनोगे ?"

बच्चन जी से उनकी रचनाएँ सुनना सदा एक सौभाग्य है। पर उस दिन मैं

बुरी तरह थका हुआ था, और मुझे नीद आ रही थी। फिर भी मैने कहा—"जरूर।" और बच्चन जी ने बगाल के अकाल पर लिखी अपनी ताजी रचना की पाण्डुलिपि मँगवा ली। कविता-पाठ आरम्भ हुआ।

सच मानिए, कुछ ही देर मे मेरी नीद न जाने कहाँ गायब हो गई। आधी कविता समाप्त होते न होते सिर दर्द, थकावट, नीद सभी दूर हो गए। एक अनिर्वचनीय ताजगी और स्फूर्ति मैने अनुभव की, और जब बच्चन जी ने—

या चण्डी सर्वभूतेषु
क्षुधारूपेण सस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै
नमस्तस्यै नमोनम ।

का पाठ किया तो जैसे भूख की शक्ति का एक जीवित चित्र मेरे सम्मुख खिच गया। ८४ पृष्ठो की इस कविता का पाठ न जाने कितनी देर मे समाप्त हुआ। मुझे जैसे समय का ज्ञान ही भूल गया था। यह अत्यन्त शक्तिशाली रचना सुनकर मुझे वह अनुभूति हुई जो एक अत्यन्त श्रेष्ठचित्र देखकर होती है। यह जानकर मुझे विस्मय हुआ कि एक हजार पक्तियो की यह कविता बच्चन जी ने केवल बत्तीस घटो मे लिखी है। एक सुबह वह कविता लिखने बैठे तो न नाश्ते के लिए उठे और न भोजन के लिए ही। रात के बारह बजे तक बिना कुछ खाए-पिए वह लिखते चले गए। उसके बाद थककर कुछ घटो के लिए लेटे, पर नीद नही आई। पुन बैठकर लिखने लगे। दूसरी साँझ तक यह कविता उन्होने सपूर्ण कर ली थी।

बच्चन जी ने जीवन के कितने ही उतार-चढाव देखे है। कितनी ही भारी असुविधाओ, अभावो और मानसिक क्लेशो का उन्हे अनुभव है। पर अपनी मेहनत और अपनी प्रतिभा के बल पर आज वह भारत सरकार के एक उच्च पदाधिकारी ह और उनका जीवन सुविधापूर्ण, पर बँधी हुई, नियमित परि-स्थितियो मे चल रहा है।

नई दिल्ली मे प्रधानमत्री-निवास से लगभग दो सौ गज की दूरी पर उनका स्वच्छ और खुला बँगला है, जिसे तेजी जी ने और बच्चन जी ने बाहर-भीतर सभी ओर से अत्यन्त सुरुचिपूर्वक सजा रखा है। वेश-भूषा से अब बच्चन कवि प्रतीत न होकर अफसर ही प्रतीत होते है। हिन्दी मे कवियो की वेश-भूषा और

रहन-सहन कुछ विचित्रता लिए रहते है। बच्चन जी मे वैसा कुछ भी नही है। ठीक तरतीब से कुछ लम्बे कटे हुए घुँघराले बाल, जिनपर ठीक तरह से कघी की जाती है। शरीर पर स्वच्छ-सफेद अचकन और तग पाजामा, पैरो मे पालिश की हुई चप्पल या सर्दियो मे सुन्दर मोजो के ऊपर पोशाक के रग के अनुरूप चमकते जूते। मोटे फ्रेम की ऐनक के पीछे दिखाई देनेवाली आँखो की गम्भीरता और भी बढ गई है और घनी भवो के ऊपर माथे पर की लकीरे और भी गहरी हो गई है। उनकी कार आकार मे बडी नही है, पर सदा स्वच्छ और चमकती रहती है। पति-पत्नी दोनो को ड्राइव करने का शौक है, यद्यपि बच्चन जी अभी तक रास्ते भूल जाते है।

दिल्ली ऐसी जगह है, जहाँ रहते हुए महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो को अपना बहुत-सा समय सामाजिक मेलजोल और पार्टियो मे गँवाना पडता है। बच्चन जी भी इस वातावरण से पूरी तरह तो बच नही पाए, पर अभी तक वह जहाँ तक सामाजिक समारोहो का सम्बन्ध है, पानी मे कमल के समान अवश्य है। हिस्सा भी लेते है तो ऊपरी मन से। अभी तक वह दिल्ली के किसी क्लब या दिल्ली की किसी भी सभा-समिति के सदस्य नही बने है। बीसियो निमन्त्रणो के रहते भी वह प्रति सप्ताह दो से अधिक साँझ घर से बाहर नही जाते।

बच्चन जी की दिनचर्या काफी नियमित है। सुबह चार बजे वह स्वय उठ जाते है। लगभग एक घण्टा तैयार होने मे लगता है, उसके बाद वह अकेले सैर के लिए जाते है। छ बजे वापस आकर वह अपनी पत्नी के साथ चाय पीते है और अखबार देखते है। साढे छ बजे से नौ बजे तक वह गम्भीर स्वाध्याय करते है। उनके अपने घर मे पाँच हजार से अधिक चुनी हुई पुस्तको का सग्रह है, जिनमे देश-विदेश के क्लैसिक्स विद्यमान है। अग्रेजी के माध्यम से सस्कृत, ग्रीक और लेटिन साहित्य के अतिरिक्त उन्होने रूसी, फ्रेंच, जर्मन और वर्तमान इटैलियन साहित्य का, विशेषत कविता का अच्छा अध्ययन किया है।

नौ बजे बच्चन जी और तेजी जी एक साथ प्रातराश लेते है; दूध, एक-आध टोस्ट और फल। उसके बाद अधिकाशत तेजी जी कार चलाकर उन्हे उनके दफ्तर तक छोड आती है, जो घर से डेढ मील के लगभग है। दोपहर का भोजन वह दफ्तर मे ही करते है। बच्चन जी शाकाहारी है। उन्हे सादा और सात्त्विक भोजन पसन्द है। साँझ को घर वापस जाकर वह अपने परिवार के साथ चाय

लेते है। उनका परिवार सक्षिप्त-सा है—पत्नी तेजी जी, बडा पुत्र अमित जो दिल्ली विश्वविद्यालय का विद्यार्थी है, छोटा पुत्र अजित, अभी नैनीताल मे पढ रहा है।

साँझ का समय जहाँ तक बन पडता है बच्चन जी घर पर ही बिताना पसन्द करते है। बागवानी का उन्हे शौक है। बच्चन जी का दूसरा शौक पत्थरो से घर-आँगन सजाने का है। जब वह सैर पर जाते है तो दो-चार छोटे-बड़े पत्थर चुन लाते है। इस समय तक वह हजारो पत्थर लाकर उन्हे अपनी कोठी व आँगन मे तथा बरामदे मे कलापूर्ण ढग से सजा चुके है। एक मदिर भी उन्होने बनाया है। यह शिव-पार्वती है, यह गणेश है, यह मास-पिण्ड सम्पाती का है। जब वह आकाश से गिरा था, उसका सम्पूर्ण शरीर जल गया था। बच्चन जी रोज उस पर पानी चढाते है। व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार से लेकर बागवानी तक वह साँझ को करते है। इसी समय वह अभ्यागतो का भी स्वागत करते है। लगभग साढे आठ बजे सारा परिवार एकसाथ भोजन करता है, और उसके बाद बच्चन जी अपने अध्ययन-कक्ष मे चले जाते है। बच्चन जी के लिए सबसे अधिक अरुचिकर बात यही है कि कोई इस समय अध्ययन-कक्ष मे पहुँचकर उनका समय नष्ट करे।

बच्चन जी का अध्ययन-कक्ष उनकी कोठी का सबसे अच्छा और काफी बडा कमरा है, जो उनका पुस्तकालय भी है। इस कक्ष मे एक मेज है, जिसके साथ एक ही कुर्सी रखी है। किसी भी अन्य व्यक्ति के लिए इस कमरे मे बैठने की व्यवस्था नही है। यो बच्चन जी के अपने आराम के लिए यहाँ एक आरामकुर्सी भी पडी है। सर्दियो मे जब वह काम करने के मूड मे होते है, तो उनका बिस्तरा भी इसी कमरे मे लगा दिया जाता है।

बच्चन जी अपना लेखन-कार्य सदा अपनी मेज पर और सतर्क रूप मे बैठकर करते है। उनका कथन है कि—'लेटकर लिखी हुई कविता भी लेखक के समान शिथिल हो जाती है। मै चुस्ती मे विश्वास रखता हूँ और चुस्त कविता लिखता हू।' जब वह लिखने लगते है तो अपने कमरे मे किसी भी व्यक्ति की मौजूदगी वह पसन्द नही करते। पेन्सिल से चुपचाप वह अपनी कविताओ का प्रथम रूप लिखते है, जो बाद मे परिष्कृत किया जाता है। प्राय वह तीन-चार रचनाओका प्रणयन एकसाथ हाथ मे लेते है। उदाहरण के लिए अनुवाद, कविता और निबध-लेखन यह सब एकसाथ चलता है, पर एक बैठक मे एक ही चीज लिखी जाती है।

बच्चन जी अपनी रचनाओ की प्रेरणा का स्रोत अपने जीवन की अनुभूतियो

को ही स्वीकार करते है। लिखने की रफ्तार एक-सी कभी नही रहती। यह विषय और मूड पर निर्भर करता है। अपने कुछ गीत उन्होने तीन मिनटो मे भी लिखे है, और किसी-किसी गीत को पूरा करने मे उन्हे महीनो भी लग गए है। एकाध गीत तो बरसो बीत जाने पर भी पूरा नही हो पाया, जैसे—मधुवर्षिणी, बरसाती चल, बरसाती चल! हालाकि यह गीत बरसो तक उनकी जबान पर रहा।

अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ बच्चन जी ने हालावाद सम्बन्धी कविताओ से किया था। इससे कुछ लोगो को यह भ्रम हो गया था कि बच्चन जी सुरा का सेवन करते है। इससे बडी भ्रान्ति उनके सम्बन्ध मे दूसरी नही हो सकती। वह कभी शराब नही पीते। उनकी हाला पूरी तरह प्रतीकात्मक है, यह समझे बिना उनकी हालावादी कविताओ का आनन्द लिया ही नही जा सकता। वह 'हाला' विद्रोह और नवजीवन का प्रतीक है।

बच्चन जी को मैंने दुखी, सुखी, चिंतित, निश्चित, प्रसन्न, अप्रसन्न—सभी मूडो मे और अनेक तरह की परिस्थितियो मे देखा है। पर सदा यही पाया है कि यह व्यक्ति सबसे पहले कवि है, उसके बाद चाहे जो कुछ हो।

बच्चन जी न केवल प्रथम श्रेणी के कवि है, वह बहुत अच्छे पाठक भी है। जो कुछ वह पढते है, वह पूरे ध्यान से और आनन्द लेकर पढते है। अपनी पुस्तको के हाशियो पर जो सक्षिप्त-सी टिप्पणिया वह लिख देते है उनमे से यहाँ मैं केवल दो का ही जिक्र कर रहा हूँ। गालिब के वह प्रशसक है। गालिब की एक गजल मे यह शेर पढकर वह फडक उठे थे

'नग्म हाए-गम को भी अये दिल गनीमत जानिए
बे-सदा हो जाएगा वह साजे-हस्ती एक दिन!'

पर इसी गजल मे उन्होने यह शेर पढा—

'धौल-धप्पा उस सरापा नाज का शेव नही।
हम ही कर बैठे थे 'गालिब' पेशदस्ती एक दिन!'

बच्चन जी ने दीवान के हाशिये पर लिख दिया—

'नदन कानन से उठाकर जैसे घूरे पर पटक दिया हो!'

बच्चन जी कविवर सुमित्रानदन पत के न केवल प्रशसक ही है, अपितु उनके छोटे भाई के समान है। उनकी 'लहर' शीर्षक कविता उन्होने 'गुजन' मे पढी, जिसमे लहरों का असीम सौदर्य वर्णित है और कवि कहता है कि वह इन सुदर

लहरो के निकट जाना चाहता है पर जा नही पाता, क्योकि—

'पर मुझे डूबने का भय है !'

बच्चन जी ने इस कविता के हाशिये पर लिख दिया है—'कायर !'

उसी पृष्ठ पर उन्होने अपनी एक प्रसिद्ध कविता की यह पक्ति भी लिख दी है—**'तीर पार कैसे रुकूँ मै, आज लहरो मे निमन्त्रण !'** (मधु कलश)

बच्चन जी ने पहली कविता सन् १९२० मे लिखी थी, जब उनकी आयु केवल तेरह बरस की थी। उसके बाद विभिन्न कवियो से प्रभावित होकर वह कुछ न कुछ पद्य-रचना करते रहे। 'मतवाला' मे प्रकाशित मुक्त छन्द वाली कविताओ से प्रभावित होकर वह मुक्त छन्द ही मे कविताएँ लिखने लगे थे। तब उनकी आयु चौदह-पन्द्रह वर्ष की थी। इस तरह की दर्जनो कविताएँ उन्होने लिखी थी, जिन्हे वह अपने मित्रो को सुनाकर उनसे दाद भी लिया करते थे। बच्चन १९३० के सत्याग्रह-आन्दोलन मे सम्मिलित हुए थे। उन दिनो जुलूसो मे सम्मिलित रूप से गाने के लिए उन्होने कितने ही गीत भी लिखे थे। इनमे से एक 'सिर जाए तो जाए, पर हिन्द आजादी पाए !' इलाहाबाद मे बहुत लोकप्रिय हुआ था।

अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ मे बच्चन पद्य-रचना के साथ-साथ कहानियाँ भी लिखने लगे थे। बल्कि उनकी प्रारम्भिक इच्छा कहानीकार बनने की ही थी। पर मधुशाला के गीतो की लोकप्रियता तथा उन गीतो को गाने की मोहक तर्ज के आविष्कार के बाद उनके भीतर का कवि एकाएक प्रबल हो गया और कहानीकार दब गया। मुझे यह विश्वास बहुत समय से है कि बच्चन जी एक श्रेष्ठ कहानीकार भी बन सकते है, क्योकि उनकी कुछ कविताओ मे सुन्दर कहानी का केन्द्रीय भाव (सेण्ट्रल थीम) विद्यमान है। बल्कि हिन्दी मे शायद बच्चन ही एकमात्र ऐसे कवि है, जिनकी बहुत-सी कविताओ मे क्लाइमेक्स (चरम बिंदु) नामक तत्त्व स्पष्टत विद्यमान है। और उनकी कविताओ का यह क्लाइ-मेक्स कहानी के क्लाइमेक्स की तरह कविता के अन्तिम भाग मे ही आता है।

बच्चन को छपाने का शौक कभी नही रहा। उनकी 'मधुशाला' की रुबाइयाँ १९३३ से लोकप्रिय होने लगी थी। १९३५ तक तो इन रुबाइयो की कितनी ही पक्तियाँ जैसे बच्चे-बच्चे की जबान पर पहुँच गई थी। फिर भी उन्होने 'मधुशाला' का प्रथम सस्करण अप्रैल, १९३५ मे प्रकाशित करवाया, जिसकी चर्चा ऊपर

की जा चुकी है। आज इतनी ख्याति प्राप्त कर लेने पर भी बच्चन ने अपनी सभी रचनाएँ प्रकाशित नही करवाई है। सन् १९४६ मे पाकिस्तान-आन्दोलन के जोर पकड लेने पर उन्होने भारत की अखण्ड एकता के सम्बन्ध मे मुक्त छन्द मे 'बगाल का काल' के समान एक खड-काव्य लिखा था, जो आज तक उन्होने प्रकाशित नही करवाया। कोई पूछता है तो कह देते है कि अब तो भारत के दो भाग हो ही गए, अब वह काव्य प्रकाशित करने से क्या लाभ। पर जितना भारत बाकी है, उसकी आधारभूत एकता को पुष्ट करने वाले साहित्य की आवश्यकता तो आज जैसे सबसे अधिक है। उनके लिखे दो कविता-सग्रहो की पाण्डुलिपियाँ १९४० मे दीमके खा गई। पाण्डुलिपियो के कुछ अधखाए भाग बच्चन को मिल भी गए। वह जरा प्रयत्न करते तो उन दोनो पाण्डुलिपियो का जीर्णोद्धार भी कर सकते थे, पर उन्होने वैसा नही किया। परिणामत दोनो ग्रथ छपने से पूर्व ही लुप्त हो गए। बच्चन की कितनी ही नई-पुरानी कविताएँ अभी पुस्तक रूप मे प्रकाशित नही हुई। न बच्चन ने कभी इस बात की चिन्ता ही की है।

बच्चन जी कविता को केवल ऑखो से पढकर आनन्द लेने की वस्तु नही मानते। उनका कथन है—'कविता आँखो के लिए है। इसे मैं उतना ही उपहासास्पद समझता हूँ जितना इस कथन को कि चश्मा नाक के लिए है। कविता कान के लिए है, कठ के लिए है।'...(बुद्ध और नाचघर) तथा—'इन गीतो के बारे मे मुझे सिर्फ दो-एक बाते और कहनी है। ये गीत है, इन्हे आँख से मौन रहकर मत पढिए, इनको स्वर दीजिए, गाइए—कुछ गीत गेय नही है, उन्हे सस्वर पढिए, भावानुरूप स्वर से। किसी से गवाकर या पढाकर सुनिए। यानी छपे हुए शब्दो की, जिसे अग्रेजी मे कहेगे, 'माउदिग' की जानी चाहिए, उन्हे मुख से 'मुखर' किया जाना चाहिए। सब गीतो को एक सिरे से दूसरे सिरे तक न पढ जाइये। यह उपन्यास नही है। मैं तो कोई अच्छा गीत सुन लेता हूँ तो बहुत देर तक दूसरा नही सुन सकता। कोई गीत आपको विशेष प्रिय लगे तो उसे फिर-फिर पढिए। अच्छा गीत दूसरी-तीसरी बार पढने पर अधिक अच्छा लगना चाहिए।' (आरती और अगारे)

अपने व्यक्तित्व तथा काव्य के सम्बन्ध मे बच्चन जी का कथन है, 'मुझे अपने कवि मे विश्वास कभी नही था, आज भी नही है, कभी आगे भी हो सकेगा, इसमे सन्देह है। मन स्थितियो और परिस्थितियो के प्रति जिस प्रकार की मेरी प्रति-

क्रिया होती है और प्रतिक्रिया होने पर जिस प्रकार की अभिव्यक्ति मैं उसे देता हूँ, यदि वह कवियो की-सी है तो मै कवि हूँ, यदि वह अभिव्यक्ति कविता-सी है तो, जो मै लिखता हूँ वह कविता है। इसे परम्परा से चली आती हुई कविता के प्रति मेरी आस्था-भर न समझा जाए। जब मैने लिखा था

'क्यो कवि कहकर संसार मुझे अपनाए,
मै दुनिया का हूँ एक नया दीवाना।' (मधुबाला)

या

कविता कहकर जग ने तेरे क्रन्दन का उपहास किया।' (निशा निमन्त्रण)

अथवा

कवियो की श्रेणी से अब से मेरा नाम हटा दो।' (मिलन यामिनी)

या

'मैने ऐसा कुछ कवियो से सुन रखा था।' (आरती और अगारे)

तब मैं अपने मन का एक सहज भाव ही प्रतिध्वनित कर रहा था। ये प्रतिक्रियाएँ, ये अभिव्यक्तियाँ मेरे लिए स्वाभाविक है। ये प्रतिक्रियाएँ मेरे सामान्य मानव के ही अन्तर्गत है, इतनी निकटता से, इतनी अनिवार्यता से कि मेरे साथ इनकी सगति बिठलाने के लिए किसी को मुझे कवि की अतिरिक्त सज्ञा देने की आवश्यकता नही, मेरे फूट पडने को छन्द बनाने, मेरे रोदन, गायन, क्रन्दन—मेरे उद्गारो को कविता कहने की जरूरत नही।

'बाबा तुलसीदास ने जब लिखा था कि 'कवि न होऊँ' तो मेरी समझ मे यह केवल नम्रता-प्रदर्शन न था। भक्ति से अन्तर भर जाने पर राम-गुन-गान उनकी स्वाभाविक प्रक्रिया हो गई होगी। और उन्हे सचमुच लगा होगा कि मैं कवि नही हूँ, जो कुछ लिख रहा हूँ वह तो मेरे सहज मानव का सहज काम है। खैर, बडो की बात बडे जाने। मैंने अपनी अनुभूति आपको बता दी।

' तब जैसे मैं हूँ, वैसे ही मेरी अभिव्यक्ति है। मै यह कहने नही जाता कि मैं दूसरो से कितना भिन्न हूँ, कितना उनके समान हूँ, मैंने जीवन मे क्या अपनाया है, क्या छोडा, कैसा मेरा रहन-सहन है, बोलचाल है, बात-व्यवहार है, क्या मेरे श्रेय-प्रेय है, जो मेरे चारो तरफ है, उनसे मैं क्या पाना चाहता हूँ, उन्हे क्या देना चाहता हूँ, उनसे अपने किन विचारो-भावों का आदान-प्रदान करना चाहता हूँ। अंग्रेज़ी मे कहना चाहूँगा, 'आई लिव देम।' मैं यह सब वरतता हूँ। इन सब चीज़ों का

सम्मिलित नाम है मेरा व्यक्तित्व। मेरी अभिव्यक्ति का भी एक व्यक्तित्व हे। और न मेरा व्यक्तित्व ही सुस्थिर है और न मेरा कवित्व ही। दोनो का विकास होता रहा है। पर, जहाँ, मेरे कल का व्यक्तित्व मेरे आज के व्यक्तित्व मे समा गया है और उसकी अलग कोई सत्ता नही रह गई, वहाँ कल की कविता भी मौजूद है और आज की भी मौजूद है। जैसे मेरे कल के व्यक्तित्व मे आज का व्यक्तित्व बीज-रूप से वर्तमान था, जैसे मेरे आज के व्यक्तित्व मे मेरे कल का व्यक्तित्व भी समाया है, वैसे ही 'मधुशाला' मे भी 'आरती' का कुछ प्रकाश और 'अगारे' की कुछ चिनगारियाँ मौजूद थी और 'आरती और अगारे' मे 'मधुशाला' का रग-राग किसी न किसी रूप मे समाया है और इसी प्रकार मेरी आगे की रचना मे भी 'आरती' का कुछ धूप और 'अगारे' का कुछ ताप रहेगा। मेरी प्रथम रचना की क्षमताएँ—इनमे शक्तियाँ और कमजोरियाँ दोनो सम्मिलित है—मेरी अन्तिम रचना ही सिद्ध कर सकेगी, मेरीअन्तिम रचना ही बताएगी कि मेरी प्रथम रचना मे क्या सभावनाएँ थीं। नाम प्रासगिक है, सिद्धान्त को अमूर्त होने से बचाने के लिए। कहने का मतलब है, जैसे मेरा जीवन सागिक (आरगेनिक) है वैसे ही मेरी कविता भी है।' (आरती और अंगारे)

अभिव्यक्ति और छन्दो के चुनाव के बारे मे वह कहते है, 'कविता के प्रसग मे अभिव्यक्ति की स्वच्छन्दता मेरे लिए निरर्थक शब्द है। कविता जब अभि-व्यंजन मात्र नही, प्रेषण और सहानुभूति (सह+अनुभूति) भी होती है तो उसके भाव-विचार उसकी अभिव्यक्ति को निर्धारित, निरूपित और अनुशासित करते है। अभिव्यक्ति मे काव्य के अन्य उपकरणो के अतिरिक्त उसका छन्द भी सम्मि-लित होता है। 'मधुशाला' ने एक प्रकार के छन्द का रूप लिया, 'निशा निमत्रण' ने दूसरे प्रकार का, 'हलाहल' ने एक तीसरे प्रकार का—उसका प्रयोग मै पहले 'खैयाम की मधुशाला' मे कर चुका था, और 'मिलन यामिनी' के पहले और तीसरे भाग ने अलग-अलग प्रकार के छन्दो का और दूसरे भाग ने विभिन्न प्रकार के छन्दो का, कुछ 'सतरगिनी' मे प्रयुक्त और कुछ सर्वथा नवीन। मैंने अपने विद्यार्थी-जीवन मे छदो का अध्ययन तो किया था, पर रचना करते समय मैंने कभी इसपर पूर्व-विचार नही किया कि किस छन्द का उपयोग किया जाए। मैंने अपने भाव-विचारो को स्वयमेव छन्दो का रूप निश्चित करने को छोड दिया है। परिणाम कैसा हुआ है, यह आप बताए।' (बुद्ध और नाचघर)

बच्चन की कितनी रचनाएँ आत्मपरक ढग से लिखी गई है, उनके सबध मे कवि का कथन है, 'कोई मुझसे कहता है, ये गीत आपकी व्यक्तिगत परिस्थितियो एव जीवन-घटनाओ से परिसीमित है। मेरा उत्तर है, जीवन के जिस छोटे-से क्षेत्र को जानने-समझने का प्रयत्न मैने किया है उसके लिए मुझे आत्मानुभव का साधन भी उपलब्ध हुआ है, उपयुक्त जान पडा है। उनसे मै तटस्थ रह सकता था, उनके निकटस्थ रह सकता था, उनसे तादात्म्य स्थापित कर सकता था। मेरी रचना, जहाँ मै तटस्थ हूँ, केवल अभिव्यजन (मैने कहा, कोई न समझे) है, जहाँ निकटस्थ हूँ, प्राय प्रेषण (मैने कहा, किसी ने समझा) है, और जहाँ मै एकात्म हूँ, वहाँ वह सहानुभूति (मैने जो अनुभव कर कहा, दूसरे ने वही अनुभव किया) जाग्रत करने मे समर्थ है, जिसे रस कहते है, जिसमे सहृदय पाठक सिद्ध कवियो की रचना पढते समय डूब जाता है, डूबकर तर जाता है।

'जो डुबा तो ले, मगर दे पार कर हाला कहाँ है' (मधु कलश)

'कविता हृदय और मस्तिष्क की सम्मिलित, सामजस्यपूर्ण प्रक्रिया का परिणाम है। हृदय अनुभवजनित भावना मे विलीन होता है, मस्तिष्क विश्लेषण-मूलक शब्दो मे उसे आकार देता है .

'रस डूबा स्वर मे उतराया,
यह गीत नया मैने गाया।' (आरती और अगारे)

'अनुभवो से तटस्थ रहने पर अभिव्यक्ति सरल, निकटस्थ होने पर कठिन और एकात्म हो जाने पर असभव हो जाती है। कबीर ने इसको गूगे का गुड कहा है।

'रहीम कहते है : **'जे जानत ते कहत नही।'**

× × ×

'राग जहाँ पर तीव्र अधिकतम
है, उसमे आवाज नहीं है।' (प्रणय पत्रिका)

'कवि की महत्ता इसीमे है कि वह हृदय और मस्तिष्क को एकसाथ सजग और सक्रिय रखता है। सहृदय पाठक कवि के अनुभवो का तो भागी होता है पर मस्तिस्क की उस प्रक्रिया को नही जान पाता जिसके द्वारा कवि का अनुभव उसे सुगम होता है। इसे जानना समालोचक का काम है, जिसे सहृदय होने के साथ ही समस्तिष्क भी होना चाहिए। कवि के समान ही समालोचक का हृदय और

मस्तिष्क एक साथ सजग और सक्रिय होता है। इसीमे कहते है—मिल्टन को समझने के लिए मिल्टन चाहिए।' (आकुल अन्तर)

राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के बलिदान से बच्चन के भावुक हृदय को बहुत गहरी चोट पहुँची, पर उसकी अभिव्यक्ति इस रूप मे हुई

'कविता लिखना मेरे जीवन की एक विवशता है—कहना चाहिए, अनेक विवशताओं मे से एक है। और अपनी इस विवशता का अनुभव सभवत कभी मैने इतनी तीव्रता से नही किया जितनी बापूजी के बलिदान पर। बापू की हत्या के लगभग एक सप्ताह बाद मैने लिखना आरम्भ किया। और प्राय सौ दिनो मे मैंने २०४ कविताएँ लिखी। मेरे लिखने की प्रगति भी कभी इससे तेज नही रही।'

(प्राक्कथन, 'सूत की माला')

जीवन की सुखद या दुखद परिस्थितियो और नानाविध परिस्थितियो से बच्चन के सृजन मे कितने ही रग आए पर "ऋषियो की अमर वाणी निरन्तर मेरे कानो मे गूजती रही 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' से 'भज्येतापि न मनमेत' तक।' (सतरगिनी, पृष्ठ ११ पक्ति २७ से पृष्ठ १२ पक्ति ६ तक)

भाव की दृष्टि से हिन्दी कविता को बच्चन की देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ही। इसके अतिरिक्त शैली की सरलता और माधुर्य की दृष्टि से भी हिन्दी कविता को बच्चन की यह देन निस्सन्देह नवीन दिशा देने वाली सिद्ध हुई है।

निस्सदेह बच्चन भारत के काव्य-जगत की एक बहुमूल्य विभूति है। उनकी रचनाएँ स्थायी महत्त्व की है, क्योकि उनमे मानव-हृदय की चिरतन अनुभूतियो का काव्यमय चित्रण है। इस सग्रह मे उनकी कुछ रचनाएँ नमूने के तौर पर दी जा रही है। चुनाव स्पष्टत मैंने अपनी व्यक्तिगत रुचि से किया है। मुझे विश्वास है कि इन रचनाओ को पढ़कर पाठक बच्चन की रचनाओ की ओर आकृष्ट होगे और वे कवि को जानने और समझने का प्रयत्न करेगे।

४, पटौदी हाउस, नई दिल्ली —चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
१५ अगस्त, १९६०

पुनश्च (१) पिछले ढाई वर्षों मे कवि बच्चन और भी अधिक कार्यशील रहे। १९६२ मे उनका जीवन सकट मे पडा था, जिसके उपचार के लिए मेजर आपरेशन कराना पडा। इसके बावजूद इन २८ महीनो मे उनकी ५ नई पुस्तकें

प्रकाशित हुई है—२ पद्य मे तथा ३ गद्य मे। इस अन्तराल मे लोकधुनो पर उन्होने कितने ही गीतो का निर्माण किया है। काव्य-जगत मे कितने ही नए परीक्षण भी कवि बच्चन ने इसी बीच किए है। यह हर्ष का विषय है कि बच्चन जागरूक है और निरन्तर आगे बढ रहे है। इस सस्करण मे सकलन को भी अप-टु-डेट बना दिया गया है।

१ जनवरी, १९६३ —चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

पुनश्च (२) इस बीच बच्चन सरकारी सेवा से अवकाश प्राप्त कर चुके है। भारत के एक विशिष्ट कवि के रूप मे राष्ट्रपति ने उन्हे राज्य सभा का सदस्य मनोनीत किया है। रूस सरकार से उन्हे नेहरू पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। दोनो पुत्र अमिताभ और अजिताभ आज आत्मनिर्भर हो चुके है। अमित फिल्मो मे और अजित एक अच्छी व्यावसायिक सस्था मे। पिछले ४ वर्षो मे बच्चन जी की एक नयी पुस्तक प्रकाशित हुई है, 'दो चट्टाने' जिसे इस सकलन मे प्रतिनिधित्व दिया जा रहा है। इस सग्रह की कुछ कविताओ ने मुझे चौका दिया। पहली बार बच्चन असाधारण आवेश मे दिखाई दिए, जहाँ '२६ जनवरी '६३' शीर्षक कविता की अन्तिम पक्तियो मे (नेफा की हार के बाद) एक बेहया, बेगैरत, बेशर्म जाति के लाखो मर्द, औरते, बच्चे रगबिरगी पोशाको मे राजमार्ग पर भीड लगाए जुलूस देखकर, शोर मचाकर अपनी खुशिया जाहिर करते है।

दद्दा के देहावसान के साथ हिन्दी काव्य की एक पीढी समाप्त हो गई। इससे मैं अब यह कहना पसन्द करूगा कि "हिन्दी कविता के क्षेत्र मे आज चार पीढियाँ एक साथ काव्य-सृजन कर रही है" इस बीच भी बच्चन जी ने काफी लिखा है। पद्य और गद्य दोनो।

(पुन परिमार्जित २७ नवम्बर, १९६८)

१३, बाराखभा रोड, नई दिल्ली —चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

पुनश्च (३) पिछले तीन वर्षो मे कवि बच्चन एक अत्यन्त सफल गद्य-लेखक के रूप मे प्रकट हुए है। इस बीच प्रति वर्ष उन्होने अपनी आत्मकथा का एक-एक खण्ड लिखा है। पहले दो खण्ड 'क्या भूलू क्या याद करू ?' तथा 'नीड का निर्माण फिर' नामो से प्रकाशित हुए है। तीसरा खण्ड प्रेस के लिए तैयार है। यह हिन्दी मे लिखी गई सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा है। सहजता, ईमानदारी और सत्य-परायणता इस आत्मकथा की विशेषताए है। आत्मकथा की टेकनीक की दृष्टि से भी एक नया प्रयोग बच्चन ने किया है, जिसमे उन्हे असाधारण सफलता मिली है। इन तीन वर्षो मे बच्चन ने अपने अतीत को फिर से जीने का जो प्रयास किया है, वह उनके लिए कितना विषादमय, कितना रोमाचक और कितना सांत्वना-दायक सिद्ध हुआ होगा। सहृदय पाठक इसकी सहज कल्पना कर सकता है।

यह इस सग्रह की छठी आवृत्ति है। बच्चन की सभी प्रमुख रचनाओ का प्रतिनिधित्व इस सग्रह मे है।

४-बी, स्लीपी हौलो — **चन्द्रगुप्त विद्यालंकार**

नैनीताल

२६ जून, १९७१

संकलन

क्रम

'सूत की माला' से

'मिलन यामिनी' से

'प्रणय पत्रिका' से

'धार के इधर-उधर' से

'आरती और अगारे' से

'बुद्ध और नाचघर' से

'त्रिभगिमा' से

'चार खेमे चौसठ खूँटे' से

'दो चट्टानें' से

'बहुत दिन बीते' से

'कटती प्रतिमाओं की आवाज़' से

'उभरते प्रतिमानों के रूप' से

मधुशाला

४

भावुकता अंगूर लता से
खींच कल्पना की हाला,
कवि साकी बनकर आया है
भरकर कविता का प्याला,
कभी न कणभर खाली होगा
लाख पिएँ, दो लाख पिएँ!
पाठकगण हैं पीनेवाले,
पुस्तक मेरी मधुशाला।

२६

एक बरस मे एक बार ही
जगती होली की ज्वाला
एक बार ही लगती बाजी,
जलती दीपो की माला,
दुनियावालो, किन्तु, किसी दिन
आ मदिरालय मे देखो,
दिन को होली, रात दिवाली,
रोज मनाती मधुशाला!

४८

सजे न मस्जिद और नमाजी,
कहता है अल्लाताला,
सज धजकर, पर, साकी, आता,
बनठनकर, पीने वाला,
शेख, कहाँ तुलना हो सकती
मस्जिद की मदिरालय से,
चिर-विधवा है मस्जिद तेरी,
सदा - सुहागिन मधुशाला ।

५०

मुसलमान औ' हिंदू है दो,
एक, मगर, उनका प्याला,
एक, मगर, उनका मदिरालय,
एक, मगर, उनकी हाला,
दोनो रहते एक न जबतक
मस्जिद - मदिर मे जाते,
बैर बढाने मस्जिद - मदिर,
मेल कराती मधुशाला ।

८२

मेरे अधरों पर हो अतिम
वस्तु न तुलसीदल, प्याला,
मेरी जिह्वा पर हो अतिम
वस्तु न गगाजल, हाला,
मेरे शव के पीछे चलने-
वालो, याद इसे रखना—
'राम नाम है सत्य' न कहना,
कहना 'सच्ची मधुशाला' ।

८३

मेरे शव पर वह रोए, हो
जिसके आँसू मे हाला,
आह भरे वह, जो हो सुरभित
मदिरा पीकर मतवाला,
दे मुझको वे कधा, जिनके
पद मद-डगमग होते हो,
और जलूँ उस ठौर, जहाँपर
कभी रही हो मधुशाला।

८४

और चिता पर जाय उँडेला
पात्र न घृत का, पर प्याला,
घट बँधे अगूर लता मे,
मध्य न जल हो, पर हाला,
प्राणप्रिये, यदि श्राद्ध करो तुम
मेरा तो ऐसा करना—
पीनेवालो को बुलवाकर,
खुलवा देना मधुशाला।

८५

नाम अगर पूछे कोई तो
कहना बस पीनेवाला,
काम, ढालना और ढलाना,
सबको मदिरा का प्याला
जाति, प्रिये, पूछे यदि कोई,
कह देना दीवानो की,
धर्म बताना, प्यालो की ले
माला जपना मधुशाला।

१२५

अपने युग मे सबको अनुपम
ज्ञात हुई अपनी हाला,
अपने युग मे सबको अद्भुत
ज्ञात हुआ अपना प्याला,
फिर भी वृद्धो से जब पूछा
एक यही उत्तर पाया—
अब न रहे वह पीनेवाले
अब न रही वह मधुशाला।

१२८

जितनी दिल की गहराई हो
उतना गहरा है प्याला,
जितनी मन की मादकता हो
उतनी मादक है हाला,
जितनी उर की भावुकता हो
उतना सुदर साकी है,
जितना ही जो रसिक, उसे है
उतनी रसमय मधशाला।

मधुबाला

प्याला

मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय !

कल काल-रात्रि के अधकार
मे थी मेरी सत्ता विलीन,
इस मूर्तिमान जग मे महान
था मै विलुप्त कल रूप-हीन,

कल मादकता की भरी नींद
थी जडता से ले रही होड,

किन सरस करो का परस आज
करता जाग्रत जीवन नवीन ?

मिट्टी से मधु का पात्र बनूं—
किस कुभकार का यह निश्चय

मिट्टी का तन, मस्ती का मन
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!

२

भ्रम भूमि रही थी जन्म-काल,
था भ्रमित हो रहा आसमान,

उस कलावान का कुछ रहस्य
होता फिर कैसे भासमान।
जब खुली आँख, तब हुआ ज्ञात
थिर है सब मेरे आस-पास,
समझा था सबको भ्रमित किन्तु
भ्रम स्वयं रहा था मैं अजान।
भ्रम से ही जो उत्पन्न हुआ,
क्या ज्ञान करेगा वह संचय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!

३

जो रस लेकर आया भू पर
जीवन-आतप ले गया छीन,
खो गया पूर्व गुण, रंग, रूप
हो जग की ज्वाला के अधीन,
मैं चिल्लाया, 'क्यों ले मेरी
मृदुता करती मुझको कठोर?'
लपटें बोलीं, 'चुप, बजा-ठोक
लेगी तुझको जगती प्रवीण।'
यह, लो, मीना बाज़ार लगा,
होता है मेरा क्रय-विक्रय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!

४

मुझको न सके ले धन-कुबेर
दिखलाकर अपना ठाट-बाट,
मुझको न सके ले नृपति मोल,
दे माल खजाना राज-पाट,

अमरो ने अमृत दिखलाया,
दिखलाया अपना अमर लोक,
ठुकराया मैने दोनो को
रखकर अपना उन्नत ललाट,
बिक, मगर, गया मै मोल बिना
जब आया मानव सरस-हृदय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन
क्षण-भर जीवन—मेरा परिचय!

५

बस एक बार पूछा जाना,
यदि अमृत मे पडता पाला,
यदि पात्र हलाहल का बनता,
बस एक बार जाता ढाला,
चिरजीवन औ' चिर मृत्यु जहाँ,
लघु जीवन की चिरप्यास कहाँ,
जो फिर-फिर होठो तक जाता
वह तो बस मदिरा का प्याला,
मेरा घर है अरमानो से
परिपूर्ण जगत का मदिरालय।
मिट्टी का तन मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!

६

मै सखी सुराही का साथी,
सहचर मधुबाला का ललाम,
अपने मानस की मस्ती से
उफनाया करता आठ याम,
कल क्रूर काल के गालो मे
जाना होगा—इस कारण ही

कुछ और बढा दी है मैने
अपने जीवन की धूमधाम
इन मेरी उल्टी चालो पर
ससार खडा करता विस्मय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!

७

मेरे पथ मे आ-आ करके
तू पूछ रहा है बार-बार,
'क्यो तू दुनिया के लोगो मे
करता है मदिरा का प्रचार?'
मै वाद-विवाद करूँ तुझसे
अवकाश कहाँ इतना मुझको,
'आनन्द करो'—यह व्यग-भरी
है किसी दग्ध-उर की पुकार,
कुछ आग बुझाने को पीते
ये भी, कर मत इनपर सशय।
मिट्टी का तन मस्ती का मन
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!

८

मै देख चुका जा मस्जिद मे
झुक-झुक मोमिन पढते नमाज,
पर अपनी इस मधुशाला मे
पीता दीवानो का समाज;
वह पुण्य कृत्य, यह पाप कर्म,
कह भी दूँ, तो दूँ क्या सबूत;
कब कचन मस्जिद पर बरसा,
कब मदिरालय पर गिरी गाज?

यह चिर अनादि से प्रश्न उठा,
मै आज करूँगा क्या निर्णय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय !

९

सुनकर आया हूँ मदिर मे
रटते हरिजन थे राम-राम,
पर अपनी इस मधुशाला मे
जपते मतवाले जाम-जाम,
पडित मदिरालय से रूठा,
मै कैसे मदिर से रूठूँ,
मै फर्क बाहरी क्या देखूँ,
मुझको मस्ती से महज काम।
भय-भ्राति-भरे जग मे दोनो
मन को बहलाने के अभिनय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय !

१०

ससृति की नाटकशाला मे
है पडा तुझे बनना ज्ञानी,
है पडा मुझे बनना प्याला,
होना मदिरा का अभिमानी,
सघर्ष यहाँ किसका किससे,
यह तो सब खेल-तमाशा है,
वह देख, यवनिका गिरती है,
समझा, कुछ अपनी नादानी !
छिप जाएँगे हम दोनो ही
लेकर अपने-अपने आशय।

मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय !

११

पल मे मृत पीनेवाले के
कर से गिर भू पर आऊँगा,
जिस मिट्टी से था मै निर्मित
उस मिट्टी मे मिल जाऊँगा,
अधिकार नही जिन बातो पर,
उन बातो की चिन्ता करके
अब तक जग ने क्या पाया है,
मै कर चर्चा, क्या पाऊँगा ?
मुझको अपना ही जन्म-निधन
है सृष्टि प्रथम, है अतिम लय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय !

इस पार, उस पार

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

१

यह चाँद उदित होकर नभ मे
कुछ ताप मिटाता जीवन का,
लहरा-लहरा यह शाखाएँ
कुछ शोक भुला देती मन का,
कल मुर्झानेवाली कलियाँ
हँसकर कहती है, मग्न रहो,
बुलबुल तरु की फुनगी पर से
संदेश सुनाती यौवन का

तुम देकर मदिरा के प्याले
मेरा मन बहला देती हो,
उस पार मुझे बहलाने का
उपचार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

२

जग मे रस की नदियाँ बहती,
रसना दो बूँदे पाती है,
जीवन की झिलमिल-सी झाँकी
नयनो के आगे आती है,
स्वर-तालमयी वीणा बजती,
मिलती है बस झंकार मुझे,
मेरे सुमनो की गंध कही
यह वायु उड़ा ले जाती है,
ऐसा सुनता, उस पार प्रिये,
ये साधन भी छिन जाएँगे,
तब मानव की चेतनता का
आधार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

३

प्याला है, पर पी पाएँगे,
है ज्ञात नही इतना हमको,
इस पार नियति ने भेजा है
असमर्थ बना कितना हमको,
कहनेवाले, पर, कहते है,
हम कर्मो मे स्वाधीन सदा,

करनेवालो की परवशता
है ज्ञात किसे, जितनी हमको,
कह तो सकते है, कहकर ही
कुछ दिल हल्का कर लेते है,
उस पार अभागे मानव का
अधिकार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

४

कुछ भी न किया था जब उसका
उसके पथ मे कॉटे बोए,
वे भार दिए धर कधो पर
जो रो-रोकर हमने ढोए,
महलो के स्वप्नो के भीतर
जर्जर खँडहर का सत्य भरा,
उर मे ऐसी हलचल भर दी,
दो रात न हम सुख से सोए,
अब तो हम अपने जीवन भर
उस क्रूर-कठिन को कोस चुके,
उस पार नियति का मानव से
व्यवहार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

५

ससृति के जीवन मे, सुभगे,
ऐसी भी घडियॉ आएँगी,
जब दिनकर की तमहर किरणे
तम के अदर छिप जाएँगी,

जब निज प्रियतम का शव, रजनी
तम की चादर से ढक देगी,
तब रवि-शशि-पोषित यह पृथिवी
कितने दिन खैर मनाएगी,
जब इस लम्बे-चौडे जग का
अस्तित्व न रहने पाएगा,
तब हम दोनो का नन्हा-सा
ससार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

६

ऐसा चिर पतझड आएगा,
कोयल न कुहुक फिर पाएगी,
बुलबुल न अँधेरे मे गा-गा
जीवन की ज्योति जगाएगी,
अगणित मृदु-नव पल्लव के स्वर
'मरमर' न सुने फिर जाएँगे,
अलि-अवली कलि-दल पर गुजन
करने के हेतु न आएगी,
जब इतनी असमय ध्वनियो का
अवसान, प्रिये, हो जाएगा,
तब शुष्क हमारे कठो का
उद्‌गार न जाने क्या होगा !
इस पार प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

७

सुन काल प्रबल का गुरु-गर्जन
निर्झरिणी भूलेगी नर्तन

निर्झर भूलेगा निज टलमल
सरिता, अपना 'कलकल' गायन
वह गायक-नायक सिधु कहीं
चुप हो छिप जाना चाहेगा
मुँह खोल खडे रह जाएँगे
गधर्व, अप्सरा, किन्नरगण,
सगीत सजीव हुआ जिनमे,
जब मौन वही हो जाएगे,
तव, प्राण, तुम्हारी तन्त्री का
जड तार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

८

उतरे इन आँखो के आगे
जो हार चमेली ने पहने,
वह छीन रहा, देखो, माली
सुकुमार लताओ के गहने,
दो दिन मे खीची जाएगी
ऊषा की सारी सिदूरी,
पट इद्रधनुष का सतरगा
पाएगा कितने दिन रहने,
जब मूर्तिमती मत्ताओ की
शोभा-सुपमा लुट जाएगी,
तव कवि के कल्पित स्वप्नो का
शृगार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

९

दृग देख जहाँ तक पाते है,
तम का सागर लहराता है,
फिर भी उस पार खडा कोई
हम सबको खीच बुलाता है,
मै आज चला, तुम आओगी
कल, परसो सब सगी-साथी,
दुनिया रोती-धोती रहती,
जिसको जाना है, जाता है ,
मेरा तो होता मन डग-मग
तट पर के ही हलकोरो से,
जब मै एकाकी पहुँचूँगा
मँझधार, न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

पगध्वनि

पहचानी वह पगध्वनि मेरी,
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !
नदन वन मे उगनेवाली
मेहदी जिन तलवो की लाली
बनकर भू पर आई आली,
मै उन तलवो से चिर परिचित,
मै उन तलवो का चिर ज्ञानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

२

ऊषा ले अपनी अरुणाई,
ले कर-किरणो की चतुराई,
जिनमे जावक रचने आई,

मै उन चरणो का चिर प्रेमी,
मै उन चरणो का चिर ध्यानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी।

३

उन मृदु चरणो का चुबन कर
ऊसर भी हो उठता उर्वर
तृण-कलि-कुसुमो से जाता भर,
मरुथल मधुवन बन लहराते
पाषाण पिघल होते पानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी।

४

उन चरणो की मजुल उँगली
पर नख-नक्षत्रो की अवली,
जीवन के पथ की ज्योति भली,
जिसका अवलबन कर जग ने
सुख-सुषमा की नगरी जानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी।

५

उन पद-पद्मो के प्रभ रजकण
का अजित कर मत्रित अजन
खुलते कवि के चिर अध नयन
तम से आकर उर से मिलती
स्वप्नो की दुनिया की रानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी।

६

उन सुन्दर चरणो का अर्चन
करते आँसू से सिधु-नयन
पद-रेखा मे उच्छ्वास पवन

देखा करता अंकित अपनी
सौभाग्य सुरेखा कल्याणी ।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

७

उन चल चरणों की कल छम-छम
से ही था निकला नाद प्रथम,
गति से, मादक तालों का क्रम,
निकली स्वर-लय की लहर जिसे
जग ने सुख की भाषा मानी ।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

८

हो शांत, जगत के कोलाहल !
रुक जा, री, जीवन की हलचल !
मैं दूर पड़ा सुन लूँ दो पल,
संदेश नया जो लाई है
यह चाल किसीकी मस्तानी ।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

९

किसके तमपूर्ण प्रहर भागे ?
किसके चिर सोए दिन जागे ?
सुख-स्वर्ग हुआ किसके आगे ?
होगी किसके कंपित कर से
इन शुभ चरणों की अगवानी ?
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

१०

बढ़ता जाता घुंघरू का रव ,
क्या यह भी हो सकता संभव ?
यह जीवन का अनुभव अभिनव ,
पदचाप शीघ्र, पग-राग तीव्र,

स्वागत को उठ, रे कवि मानी !
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

११

ध्वनि पास चली मेरे आती,
सब अग शिथिल, पुलकित छाती,
लो, गिरती पलके मदमाती,
पग को परिरभण करने की,
पर, इन युग बाहो ने ठानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

१२

रव गूँजा भू पर, अबर मे,
सर मे, सरिता मे, सागर मे
प्रत्येक श्वास मे, प्रति स्वर मे,
किस-किसका आश्रय ले फैले,
मेरे हाथो की हैरानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

१३

ये ढूँढ रहे ध्वनि का उद्गम,
मजीर-मुखर-युत पद निर्मम,
है ठौर सभी जिनकी ध्वनि सम,
इनको पाने का यत्न वृथा,
श्रम करना केवल नादानी !
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

१४

ये कर नभ-जल-थल मे भटके,
आकर मेरे उर पर अटके,
जो पग द्वय थे अदर घट के,

थे ढूँढ रहे उनको बाहर
ये युग कर मेरे अज्ञानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी!

१५

उर के ही मधुर अभाव चरण
बन करते स्मृति-पट पर नर्तन,
मुखरित होता रहता बन-बन
मै ही इन चरणो मे नूपुर,
नूपुर-ध्वनि मेरी ही वाणी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी!

आत्म-परिचय

१

मैं जग-जीवन का भार लिए फिरता हूँ,
फिर भी जीवन मे प्यार लिए फिरता हूँ,
कर दिया किसीने झकृत जिनको छूकर,
मै साँसो के दो तार लिए फिरता हूँ!

२

मैं स्नेह-सुरा का पान किया करता हूँ,
मै कभी न जग का ध्यान किया करता हूँ,
जग पूछ रहा उनको, जो जग की गाते,
मैं अपने मन का गान किया करता हूँ!

३

मैं निज उर के उद्गार लिए फिरता हूँ,
मैं निज मन के उपहार लिए फिरता हूँ,
है यह अपूर्ण ससार न मुझको भाता,
मैं स्वप्नो का ससार लिए फिरता हूँ!

४

मै जला हृदय मे अग्नि, दहा करता हूँ,
सुख-दुख दोनो मे मग्न रहा करता हूँ,
जग भव-सागर तरने को नाव बनाए
मैं मन-मौजो पर मस्त बहा करता हूँ।

५

मै यौवन का उन्माद लिए फिरता हूँ,
उन्मादो मे अवसाद लिए फिरता हूँ,
जो मुझको बाहर हँसा, रुलाती भीतर,
मैं, हाय, किसीकी याद लिए फिरता हूँ।

६

कर यत्न मिटे सब, सत्य किसीने जाना ?
नादान वही है, हाय, जहाँ पर दाना।
फिर मूढ न क्या, जग, जो इस पर भी सीखे ?
मैं सीख रहा हूँ सीखा ज्ञान भुलाना।

७

मै और, और, जग और, कहाँ का नाता,
मैं बना-बना कितने जग रोज मिटाता,
जग जिस पृथ्वी पर जोडा करता वैभव,
मै प्रति पग से उस पृथ्वी को ठुकराता।

८

मै निज रोदन मे राग लिए फिरता हूँ,
शीतल वाणी मे आग लिए फिरता हूँ,
हो जिसपर भूपो के प्रासाद निछावर,
मै वह खँडहर का भाग लिए फिरता हूँ।

९

मै रोया, इसको तुम कहते हो गाना,
मै फूट पडा, तुम कहते, छद बनाना ,

क्यों कवि कहकर संसार मुझे अपनाए,
मैं दुनिया का हूँ एक नया दीवाना !

१०

मैं दीवानों का वेश लिए फिरता हूँ,
मैं मादकता निःशेष लिए फिरता हूँ,
जिसको सुनकर जग झूम झुके, लहराए,
मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूँ !

मधु-कलश

कवि की वासना

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा।
सृष्टि के प्रारभ मे
मैने उषा के गाल चूमे
बाल रवि के भाग्यवाले
दीप्त भाल विशाल चूमे,
प्रथम सध्या के अरुण दृग
चूमकर मैने सुलाए
तारिका-कलि से सुसज्जित
नव निशा के बाल चूमे,
वायु के रसमय अधर
पहले सके छू होठ मेरे,
मृत्तिका की पुतलियो से
आज क्या अभिसार मेरा।
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा।

२

विगत-बाल्य वसुधरा के
उच्च तुग-उरोज उभरे,

तरु उगे हरिताभ पट धर
काम के ध्वज मत्त फहरे,
चपल उच्छृंखल करों ने
जो किया उत्पात उस दिन,
है हथेली पर लिखा वह,
पढ भले ही विश्व हहरे,
प्यास वारिधि से बुझाकर
भी रहा अतृप्त हूँ मैं,
कामिनी के कुच-कलश से
आज कैसा प्यार मेरा !
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा !

३

इद्रधनु पर शीश धरकर
बादलो की सेज सुख पर
सो चुका हूँ नीद भर मै
चचला को बाहु मे भर,
दीप रवि-शशि-तारको ने
बाहरी कुछ केलि देखी,
देख पर, पाया न कोई
स्वप्न वे सुकुमार सुन्दर
जो पलक पर कर निछावर
थी गई मधु यामिनी वह,
यह समाधि बनी हुई है,
यह न शयनागार मेरा !
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा !

४

आज मिट्टी से घिरा हूँ
पर उमगे है पुरानी,
सोमरस जो पी चुका है
आज उसके हाथ पानी,
होठ प्यालो पर झुके तो
थे विवश इसके लिए वे,
प्यास का व्रत धार बैठा,
आज है मन, किंतु मानी,
मै नही हूँ देह-धर्मो से
बँधा, जग, जान ले तू,
तन विकृत हो जाय लेकिन
मन सदा अविकार मेरा।
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!

५

निष्परिश्रम छोड जिनको
मोह लेता विश्व भर को
मानवो को, सुर-असुर को,
वृद्ध ब्रह्मा, विष्णु, हर को,
भग कर देता तपस्या
सिद्ध, ऋषि, मुनि सत्तमो की
वे सुमन के बाण मैने
ही दिए थे पचशर को,
शक्ति रख कुछ पास अपने
ही दिया यह दान मैने,
जीत पाएगा इन्ही से
आज क्या मनमार मेरा!

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा !

६

प्राण प्राणो मे सके मिल
किस तरह, दीवार है तन,
काल है घडियाँ न गिनता,
बेडियो का शब्द झन-झन,
वेद-लोकाचार प्रहरी
ताकते हर चाल मेरी,
बद्ध इस वातावरण मे
क्या करे अभिलाष यौवन !
अल्पतम इच्छा यहाँ
मेरी बनी बन्दी पडी है,
विश्व क्रीडास्थल नही रे,
विश्व कारागार मेरा !
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा !

७

थी तृपा जब शीत जल की
खा लिए अगार मैने,
चीथडे से उस दिवस था
कर लिया श्रृगार मैने
राजसी पट पहनने की
जब हुई इच्छा प्रबल थी,
चाह-सचय मे लुटाया
था भरा भडार मैने,
वासना जब तीव्रतम थी
वन गया था सयमी मैं,
है रही मेरी क्षुधा ही

सर्वदा आहार मेरा !
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा !

८

कल छिडी, होगी खतम कल
प्रेम की मेरी कहानी,
कौन हूँ मै, जो रहेगी,
विश्व मे मेरी निशानी ?
क्या किया मैने नही जो
कर चुका ससार अब तक ?
वृद्ध जग को क्यो अखरती
है क्षणिक मेरी जवानी ?
मै छिपाना जानता तो
जग मुझे साधू समझता,
शत्रु मेरा बन गया है
छल-रहित व्यवहार मेरा !
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा !

लहरों का निमंत्रण

तीर पर कैसे रुकूँ मै,
आज लहरो मे निमत्रण !

१

रात का अतिम प्रहर है,
झिलमिलाते हैं सितारे,
वक्ष पर युग बाहु बाँधे
मै खडा सागर किनारे
वेग से बहता प्रभजन
केश-पट मेरे उड़ाता,

शून्य मे भरता उदधि—
उर की रहस्यमयी पुकारे,
इन पुकारो की प्रतिध्वनि
हो रही मेरे हृदय मे,
हैं प्रतिच्छायित जहाँ पर
सिधु का हिल्लोल-कपन !
तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरो मे निमत्रण !

२

विश्व की सपूर्ण पीडा
सम्मिलित हो रो रही है,
शुष्क पृथ्वी आसुओ से
पाँव अपने धो रही है,
इस धरा पर जो बसी दुनिया
यही अनुरूप उसके—
इस व्यथा से हो न विचलित
नीद सुख की सो रही है,
क्यो धरणि अब तक न गलकर
लीन जलनिधि मे गई हो ?
देखते क्यो नेत्र कवि के
भूमि पर जड-तुल्य जीवन ?
तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरो मे निमत्रण !

३

जड जगत मे वास कर भी
जड नही व्यवहार कवि का
भावनाओ से विनिर्मित
और ही ससार कवि का,

बूँद के उच्छ्वास को भी
अनसुनी करता नही वह,
किस तरह होता उपेक्षा-
पात्र पारावार कवि का,
विश्व-पीडा से, सुपरिचित
हो तरल बनने, पिघलने,
त्यागकर आया यहाँ कवि
स्वप्न-लोको के प्रलोभन।
तीर पर कैसे रुकूँ मै,
आज लहरो मे निमत्रण।

४

जिस तरह मरु के हृदय मे
है कही लहरा रहा सर,
जिस तरह पावस-पवन मे
है पपीहे का छिपा स्वर
जिस तरह से अश्रु-आहो से
भरी कवि की निशा मे
नीद की परियाँ बनाती
कल्पना का लोक सुखकर
सिधु के इस तीव्र हाहा-
कार ने, विश्वास मेरा,
है छिपा रक्खा कही पर
एक रस-परिपूर्ण गायन।
तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरो मे निमत्रण।

५

नेत्र सहसा आज मेरे
तम-पटल के पार जाकर

देखते है रत्न-सीपी से
बना प्रासाद सुन्दर
है खडी जिसमे उषा ले,
दीप कुंचित रश्मियों का,
ज्योति मे जिसकी सुनहली
सिंधु कन्याएँ मनोहर
गूढ अर्थो से भरी मुद्रा
बनाकर गान करती
और करती अति अलौकिक
ताल पर उन्मत्त नर्तन !
तीर पर कैसे रुकूँ मै
आज लहरो मे निमत्रण !

६

मौन हो गधर्व बैठे
कर श्रवण इस गान का स्वर,
वाद्य-यन्त्रो पर चलाते
है नही अब हाथ किन्नर,
अप्सराओ के उठे जो
पग उठे ही रह गए है,
कर्ण उत्सुक, नेत्र अपलक
साथ देवो के पुरन्दर
एक अद्भुत और अविचल
चित्र-सा है जान पडता,
देव बालाएँ विमानो से
रही कर पुष्प-वर्षण ।
तीर पर कैसे रुकूँ मै,
आज लहरो मे निमत्रण ।

दीर्घ उर मे भी जलधि के
है नही खुशियाँ समाती,
बोल सकता कुछ न उठती
फूल बारबार छाती,
हर्ष रत्नागार अपना
कुछ दिखा सकता जगत को,
भावनाओ से भरी यदि
यह फफककर फूट जाती,
सिन्धु जिस पर गर्व करता
और जिसकी अर्चना को
स्वर्ग झुकता, क्यो न उसके
प्रति करे कवि अर्घ्य अर्पण।
तीर पर कैसे रुकूँ मै
आज लहरो मे निमत्रण।

८

आज अपने स्वप्न को मै
सच बनाना चाहता हूँ,
दूर की इस कल्पना के
पास जाना चाहता हूँ,
चाहता हूँ तैर जाना
सामने अबुधि पडा जो,
कुछ विभा उस पार की
इस पार लाना चाहता हूँ,
स्वर्ग के भी स्वप्न भू पर
देख उनसे दूर ही था,
किन्तु पाऊँगा नही कर
आज अपने पर नित्रमण।

तीर पर कैसे रुकूँ मै
आज लहरो मे निमत्रण!

९

लौट आया यदि वहाँ से
तो यहाँ नव युग लगेगा,
नव प्रभाती गान सुनकर
भाग्य जगती का जगेगा,
शुष्क जडता शीघ्र बदलेगी
सरल चैतन्यता मे,
यदि न पाया लौट, मुझको
लाभ जीवन का मिलेगा,
पर पहुँच ही यदि न पाया
व्यर्थ क्या प्रस्थान होगा?
कर मकूँगा विश्व मे फिर—
भी नये पथ का प्रदर्शन!
तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरो मे निमत्रण!

१०

स्थल गया है भर पथो से
नाम कितनो के गिनाऊँ,
स्थान बाकी है कहाँ पथ
एक अपना भी बनाऊँ?
विश्व तो चलता रहा है
थाम राह बनी-बनाई
किंतु इनपर किस तरह मै
कवि-चरण अपने बढाऊँ?
राह जल पर भी बनी है,
रूढि, पर, न हुई कभी वह,
एक तिनका भी बना सकता

यहाँ पर मार्ग नूतन!
तीर पर कैसे रुकूँ मै,
आज लहरो मे निमत्रण!

११

देखता हूँ आँख के आगे
नया यह क्या तमाशा—
कर निकलकर दीर्घ जल से
हिल रहा करता मना-सा,
है हथेली-मध्य चित्रित
नीर मग्नप्राय बेडा!
मैं इसे पहचानता हूँ,
है नही क्या यह निराशा?
हो पडी उद्दाम इतनी
उर-उमगे, अब न उनको
रोक सकता भय निराशा का,
न आशा का प्रवचन।
तीर पर कैसे रुकूँ मै,
आज लहरो मे निमत्रण!

१२

पोत अगणित इन तरगो ने
डुबाए मानता मै,
पार भी पहुँचे बहुत-से—
बात यह भी जानता मै,
किंतु होता सत्य यदि यह
भी, सभी जलयान डूबे,
पार जाने की प्रतिज्ञा
आज बरबस ठानता मै,
डूबता मै, किंतु उतराता
सदा व्यक्तित्व मेरा

हो युवक डूबे भले ही
है कभी डूबा न यौवन।
तीर पर कैसे रुकूँ मै,
आज लहरों मे निमत्रण।

१३

आ रही प्राची क्षितिज से
खीचने वाली सदाएँ,
मानवो के भाग्य-निर्णायक
सितारो! दो दुआएँ,
नाव, नाविक, फेर ले जा,
है नही कुछ काम इसका,
आज लहरो से उलझने को
फडकती है भुजाएँ
प्राप्त हो उस पार भी इस
पार-सा चाहे अँधेरा,
प्राप्त हो युग की उषा
चाहे लुटाती नव किरण-धन।
तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरो मे निमंत्रण।

निशा-निमन्त्रण

१

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!
हो जाय न पथ मे रात कही,
मजिल भी तो है दूर नही—
यह सोच थका दिन का पथी भी जल्दी-जल्दी चलता है!
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!
बच्चे प्रत्याशा मे होगे,
नीड़ो से झॉक रहे होगे—
यह ध्यान परो मे चिडियो के भरता कितनी चचलता है!
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!
मुझसे मिलने को कौन विकल?
मैं होऊँ किसके हित चंचल?—
यह प्रश्न शिथिल करता पद को, भरता उर में विह्वलता है!
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!

१०

तुम तूफान समझ पाओगे?
गीले बादल, पीले रजकण,
पत्ते, रूखे तृण घन

लेकर चलता करता 'हरहर'—इसका गान समझ पाओगे ?
तुम तूफान समझ पाओगे ?
गध-भरा यह मद पवन था,
लहराता इससे मधुवन था,
सहसा इसका टूट गया जो स्वप्न महान, समझ पाओगे ?
तुम तूफान समझ पाओगे ?
तोड-मरोड विटप-लतिकाएँ,
नोच-खसोट कुसुम-कलिकाएँ,
जाता है अज्ञात दिशा को ! हटो विहगम, उड जाओगे !
तुम तूफान समझ पाओगे ?

२३

आओ, सो जाएँ, मर जाएँ !
स्वप्न-लोक से हम निर्वासित,
कब से गृह-सुख को लालायित,
आओ, निद्रा-पथ से छिपकर हम अपने घर जाएँ !
आओ, सो जाएँ, मर जाएँ !
मौन रहो, मुख से मत बोलो,
अपना यह मधुकोष न खोलो,
भय है कही हृदय के मेरे घाव न ये भर जाएँ !
आओ, सो जाएँ, मर जाएँ !
आँसू भी न बहाएँगे हम,
जग से क्या ले जाएँगे हम—
यदि निधनो के अंतिम धन ये जल-कण भी झर जाएँ !
आओ, सो जाएँ, मर जाएँ !

२५

कोई पार नदी के गाता !
भग निशा की नीरवता कर,
इस देहाती गाने का स्वर,
ककड़ी के खेतो से उठकर, आता जमुना पर लहराता !

कोई पार नदी के गाता!
होंगे भाई-बंधु निकट ही,
कभी सोचते होंगे यह भी,
इस तट पर भी बैठा कोई उसकी तानों से सुख पाता!
कोई पार नदी के गाता!
आज न जाने क्यों होता मन
सुनकर यह एकाकी गायन,
सदा इसे मैं सुनता रहता, सदा इसे यह गाता जाता!
कोई पार नदी के गाता!

३०

कहते हैं, तारे गाते हैं!
सन्नाटा वसुधा पर छाया,
नभ में हमने कान लगाया,
फिर भी अगणित कंठों का यह राग नहीं हम सुन पाते हैं!
कहते हैं, तारे गाते हैं!
स्वर्ग सुना करता यह गाना,
पृथ्वी ने तो बस यह जाना,
अगणित ओस-कणों में तारों के नीरव आँसू आते हैं!
कहते हैं, तारे गाते हैं!
ऊपर देव, तले मानवगण,
नभ में दोनों गायन-रोदन,
राग सदा ऊपर को उठता, आँसू नीचे झर जाते हैं!
कहते हैं, तारे गाते हैं!

३६

साथी, सो न, कर कुछ बात!
बोलते उडुगण परस्पर,
तरु दलों में मंद 'मरमर',
बात करतीं सरि-लहरियाँ कूल से जल-स्नात!

साथी, सो न, कर कुछ बात !
बात करते सो गया तू,
स्वप्न मे फिर खो गया तू,
रह गया मैं और आधी बात, आधी रात !
साथी, सो न, कर कुछ बात !
पूर्ण कर दे वह कहानी,
जो शुरू की थी सुनानी,
आदि जिसका हर निशा मे अत चिर अज्ञात !
साथी, सो न, कर कुछ बात !

४८

रात आधी हो गई है !
जागता मैं आँख फाड़े,
हाय, सुधियों के सहारे,
जब कि दुनिया स्वप्न के जादू-भवन मे खो गई है !
रात आधी हो गई है !
सुन रहा हूँ, शांति इतनी,
है टपकती बूंद जितनी,
ओस की जिनसे द्रुमो का गात रात भिगो गई है !
रात आधी हो गई है !
दे रही कितना दिलासा,
आ झरोखे से जरा-सा
चाँदनी पिछले पहर की पास मे जो सो गई है !
रात आधी हो गई है !

६३

मैंने भी जीवन देखा है।
अखिल विश्व था आलिंगन मे,
था समस्त जीवन चुंबन मे,
युग कर पाए माप न जिसकी मैंने ऐसा क्षण देखा है !

मैंने भी जीवन देखा है।
सिंधु जहाँ था, मरु सोता है!
अचरज क्या मुझको होता है?
अतुल प्यार का अतुल घृणा मे मैने परिवर्तन देखा है!
मैंने भी जीवन देखा है।
प्रिय, सब कुछ खोकर जीता हूँ,
चिर अभाव का मधु पीता हूँ,
यौवन-रँगरलियों से प्यारा मैंने सूनापन देखा है!
मैंने भी जीवन देखा है।

७०

बीते दिन कब आने वाले!
मेरी वाणी का मधुमय स्वर
विश्व सुनेगा कान लगाकर,
दूर गए पर मेरे उर की धडकन को सुन पानेवाले!
बीते दिन कब आनेवाले!
विश्व करेगा मेरा आदर
हाथ बढाकर, शीश नवाकर,
पर न खुलेंगे नेत्र प्रतीक्षा मे जो रहते थे मतवाले!
बीते दिन कब आनेवाले!
मुझमे है देवत्व जहाँ पर,
झुक जाएगा लोक वहाँ पर,
पर न मिलेंगे मेरी दुर्बलता को अब दुलरानेवाले!
बीते दिन कब आनेवाले!

८६

आओ, हम पथ से हट जाएँ!
युवती और युवक मदमाते
उत्सव आज मनाने आते,
लिए नयन मे स्वप्न, वचन मे हर्ष, हृदय मे अभिलाषाएँ!

आओ, हम पथ से हट जाएँ!
इनकी इन मधुमय घडियो मे,
हास-लास की फुलझडियो मे,
हम न अमंगल शब्द निकाले, हम न अमगल अश्रु बहाएँ!
आओ, हम पथ से हट जाएँ!
यदि इनका सुख-सपना टूटे,
काल इन्हे भी हम-सा लूटे,
धैर्य बँधाएँ इनके उर को हम पथिको की करुण कथाएँ!
आओ, हम पथ से हट जाएँ!

९२

क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मै!
अगणित उन्मादो के क्षण है,
अगणित अवसादो के क्षण है,
रजनी की सूनी घडियों को किन-किन से आबाद करूँ मैं!
क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं!
याद सुखो की आँसू लाती,
दुख की, दिल भारी कर जाती,
दोष किसे दूँ जब अपने से अपने दिन बर्बाद करूँ मै!
क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं!
दोनो करके पछताता हूँ,
सोच नही, पर, मैं पाता हूँ,
सुधियो के बधन से कैसे अपने को आज़ाद करूँ मै!
क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं!

एकांत संगीत

तट पर है तरुवर एकाकी,
नौका है, सागर मे,
अतरिक्ष मे खग एकाकी,
तारा है, अबर मे;
भू पर वन, वारिधि पर बेड़े,
नभ मे उडु-खग मेला,
नर-नारी से भरे जगत मे
कवि का हृदय अकेला !

२१

मैं जीवन में कुछ कर न सका !
जग में अँधियारा छाया था,
मैं ज्वाला लेकर आया था,
मैंने जलकर दी आयु बिता, पर जगती का तम हर न सका !
मैं जीवन मे कुछ कर न सका !
अपनी ही आग बुझा लेता,
तो जी को धैर्य बँधा देता,
मधु का सागर लहराता था, मधु प्याला भी मैं भर न सका !
मैं जीवन में कुछ कर न सका !

बीता अवसर क्या आएगा,
मन जीवन भर पछताएगा,
मरना तो होगा ही मुझको,जब मरना था तब मर न सका !
मैं जीवन मे कुछ कर न सका !

७३

अग्नि पथ ! अग्नि पथ ! अग्नि पथ !
वृक्ष हों भले खडे,
हो घने, हो बडे,
एक पत्र-छाँह भी माँग मत, माँग मत, माँग मत !
अग्नि पथ ! अग्नि पथ ! अग्नि पथ !
तू न थकेगा कभी !
तू न थमेगा कभी !
तू न मुडेगा कभी ! —कर शपथ, कर शपथ, कर शपथ !
अग्नि पथ ! अग्नि पथ ! अग्नि पथ !
यह महान दृश्य है—
चल रहा मनुष्य है
अश्रु-स्वेद-रक्त से लथपथ, लथपथ, लथपथ !
अग्नि पथ ! अग्नि पथ ! अग्नि पथ !

६२

प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर !
युद्धक्षेत्र मे दिखला भुजबल !
रहकर अविजित, अविचल प्रतिपल,
मनुज-पराजय के स्मारक है मठ, मस्जिद, गिरजाघर !
प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर !
मिला नही जो स्वेद बहाकर,
निज लोहू से भीग-नहाकर,
वर्जित उसको, जिसे ध्यान है जग मे कहलाए नर !
प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर !

झुकी हुई अभिमानी गर्दन,
बँधे हाथ, नत-निष्प्रभ लोचन !
यह मनुष्य का चित्र नहीं है, पशु का है रे कायर !
प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर !

आकुल अंतर

१

लहर सागर का नही शृंगार,
उसकी विकलता है,
अनिल अंबर का नही खिलवार,
उसकी विकलता है,
विविध रूपो मे हुआ साकार,
रंगो से सुरंजित,
मृत्तिका का यह नही संसार,
उसकी विकलता है।
गंध कलिका का नही उद्गार,
उसकी विकलता है,
फूल मधुवन का नही गलहार,
उसकी विकलता है;
कोकिला का कौन-सा व्यवहार,
ऋतुपति को न भाया!
कूक कोयल की नही मनुहार,
उसकी विकलता है।
गान गायक का नही व्यापार,
उसकी विकलता है:

राग वीणा की नही झकार,
उसकी विकलता है,
भावनाओ का मधुर आधार
साँसो से विनिर्मित,
गीत कवि उर का नही उपहार
उसकी विकलता है।

६

जानकर अनजान बन जा।
पूछ मत आराध्य कैसा,
जब कि पूजा-भाव उमडा,
मृत्तिका के पिड से कह दे
कि तू भगवान बन जा।
जानकर अनजान बन जा।
आरती बनकर जला तू,
पथ मिला, मिट्टी सिधारी,
कल्पना की वचना से
सत्य से अज्ञान बन जा।
जानकर अनजान बन जा।
किन्तु दिल की आग का
ससार मे उपहास कब तक ?
किंतु होना हाय, अपने आप
हतविश्वास कब तक ?
अग्नि को अदर छिपाकर,
हे हृदय, पाषाण बन जा।
जानकर अनजान बन जा।

७

कैसे भेट तुम्हारी ले लूं ?
क्या तुम लाई हो चितवन मे,
क्या तुम लाई हो चुबन मे.

अपने कर मे क्या तुम लाईं,
क्या तुम लाईं अपने मन मे,
क्या तुम नूतन लाईं जो मैं
फिर से बधन झेलूँ?
कैसे भेट तुम्हारी ले लूँ?

अश्रु पुराने, आह पुरानी,
युग बाँही की चाह पुरानी,
उथले मन की थाह पुरानी,
वही प्रणय की राह पुरानी
अर्घ्य प्रणय का कैसे अपनी
अतर्ज्वाला मे लूँ?
कैसे भेट तुम्हारी ले लूँ?

खेल चुका मिट्टी के घर से
खेल चुका मैं सिंधु लहर से,
नभ के सूनेपन से खेला,
खेला झझा के झर झर से;
तुम मे आग नही है तब क्या
संग तुम्हारे खेलूँ?
कैसे भेंट तुम्हारी ले लूँ?

३६

चाँद-सितारो, मिलकर गाओ!
आज अधर से अधर मिले है,
आज बाँह से बाँह मिली,
आज हृदय से हृदय मिले हैं
मन से मन की चाह मिली;
चाँद-सितारो, मिलकर गाओ!

चाँद-सितारे मिलकर बोले,
कितनी बार गगन के नीचे
प्रणय-मिलन व्यापार हुआ है

कितनी बार धरा पर प्रेयसि-
प्रियतम का अभिसार हुआ है!
चाँद-सितारे मिलकर बोले।
चाँद-सितारो, मिलकर रोओ!
आज अधर से अधर अलग है,
आज बाँह से बाँह अलग,
आज हृदय से हृदय अलग है,
मन से मन की चाह अलग,
चाँद-सितारो, मिलकर रोओ!
चाँद-सितारे मिलकर बोले,
कितनी बार गगन के नीचे
अटल प्रणय के बधन टूटे,
कितनी वार धरा के ऊपर
प्रेयसि-प्रियतम के प्रण टूटे!
चाँद-सितारे मिलकर बोले।

सतरंगिनी

अँधेरे का दीपक

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?
कल्पना के हाथ से कम-
नीय जो मदिर बना था,
भावना के हाथ ने जिसमे
वितानो को तना था,
स्वप्न ने अपने करो से
था जिसे रुचि से सँवारा,
स्वर्ग के दुष्प्राप्य रगो
से, रसो से जो सना था,
ढह गया वह तो जुटाकर
ईंट, पत्थर, ककड़ो को
एक अपनी शाति की
कुटियाबनाना कब मना है ?
है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

२

बादलों के अश्रु से धोया
गया नभ-नील नीलम
का बनाया था गया मधु-
पात्र मनमोहक, मनोरम,
प्रथम ऊषा की किरण की
लालिमा-सी लाल मदिरा
थी उसी मे चमचमाती
नव घनों मे चंचला सम,
वह अगर टूटा मिलाकर
हाथ की दोनो हथेली,
एक निर्मल स्रोत से
तृष्णा बुझाना कब मना है?
है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है?

३

क्या घड़ी थी एक भी
चिंता नहीं थी पास आई,
कालिमा तो दूर, छाया
भी पलक पर थी न छाई,
आँख से मस्ती झपकती,
बात से मस्ती टपकती,
थी हँसी ऐसी जिसे सुन
बादलों ने शर्म खाई,
वह गई तो ले गई
उल्लास के आधार, माना,
पर अथिरता पर समय की
मुसकराना कब मना है?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

४

हाय, वे उन्माद के झोके
कि जिनमे राग जागा,
वैभवो से फेर आँखे
गान का वरदान माँगा,
एक अतर से ध्वनित हो
दूसरे मे जो निरतर,
भर दिया अबर-अवनि को
मत्तता के गीत गा-गा,
अन्त उनका हो गया तो
मन बहलने के लिए ही,
ले अधूरी पक्ति कोई
गुनगुनाना कब मना है ?
है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

५

हाय, वे साथी कि चुबक-
लौह-से जो पास आए,
पास क्या आए, हृदय के
बीच ही गोया समाए,
दिन कटे ऐसे कि कोई
तार बीणा के मिलाकर
एक मीठा और प्यारा
जिदगी का गीत गाए,
वे गए तो सोचकर यह
लौटनेवाले नही वे,

खोज मन का मीत कोई
लौ लगाना कब मना है?
है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है?

६

क्या हवाएँ थी कि उजडा
प्यार का वह आशियाना,
कुछ न आया काम तेरा
शोर करना, गुल मचाना,
नाश की उन शक्तियो के
साथ चलता जोर किसका,
किन्तु ऐ निर्माण के
प्रतिनिधि, तुझे होगा बताना,
जो बसे है वे उजड़ते
है प्रकृति के जड नियम से,
पर किसी उजडे हुए को
फिर बसाना कब मना है?
है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है?

जो बीत गई सो बात गई

जो बीत गई सो बात गई!
जीवन मे एक सितारा था,
माना, वह बेहद प्यारा था,
वह डूब गया तो डूब गया,
अम्बर के आनन को देखो,
कितने इसके तारे टूटे,
कितने इसके प्यारे छूटे,

जो छूट गए फिर कहाँ मिले,
पर बोलो टूटे तारों पर
कब अबर शोक मनाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

२

जीवन मे वह था एक कसुम,
थे उसपर नित्य निछावर तुम,
वह सूख गया तो सूख गया,
मधुवन की छाती को देखो,
सूखी कितनी इसकी कलियाँ,
मुर्झाईं कितनी बल्लरियाँ,
जो मुर्झाई फिर कहाँ खिली,
पर बोलो सूखे फूलो पर;
कब मधुवन शोर मचाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

३

जीवन मे मधु का प्याला था,
तुमने तन-मन दे डाला था,
वह टूट गया तो टूट गया,
मदिरालय का आँगन देखो,
कितने प्याले हिल जाते है,
गिर मिट्टी मे मिल जाते है,
जो गिरते है कब उठते है,
पर बोलो टूटे प्यालो पर
कब मदिरालय पछताता है !
जो बीत गई सो बात गई !

४

मृदु मिट्टी के है बने हुए,
मधुघट फूटा ही करते है,

लघु जीवन लेकर आए है,
प्याले टूटा ही करते है,
फिर भी मदिरालय के अदर
मधु के घट है, मधुप्याले है,
जो मादकता के मारे है,
वे मधु लूटा ही करते है;
वह कच्चा पीनेवाला है
जिसकी ममता घट-प्यालो पर,
जो सच्चे मधु से जला हुआ
कब रोता है, चिल्लाता है!
जो बीत गई सो बात गई!

तूफ़ान

कौन यह तूफ़ान रोके!
हिल उठे जिससे समुंदर,
हिल उठे दिशि और अबर,
हिल उठे जिससे धरा के
वन सघन कर शब्द हर-हर,
उस बवडर के झकोरे
किस तरह इन्सान रोके!
कौन यह तूफ़ान रोके!

२

उठ गया, लो, पाँव मेरा,
छुट गया, लो, ठाँव मेरा,
अलविदा, ऐ साथवालो,
और मेरा पथ-डेरा;
तुम न चाहो, मैं न चाहूँ,
कौन भाग्य-विधान रोके!
कौन यह तूफ़ान रोके!

आज मेरा दिल बढा है,
आज मेरा दिल चढा है,
हो गया बेकार सारा
जो लिखा है, जो पढा है,
रुक नही सकते हृदय के
आज तो अरमान रोके !
कौन यह तूफान रोके !

४

आज करते हैं इशारे
उच्चतम नभ के सितारे,
निम्नतम घाटी डराती
आज अपना मुँह पसारे;
एक पल नीचे नजर है,
एक पल ऊपर नजर है;
कौन मेरे अश्रु थामे,
कौन मेरे गान रोके !
कौन यह तूफान रोके !

नई झनकार

छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है !
मौन तम के पार से यह कौन,
तेरे पास आया,
मौत मे सोए हुए ससार
को किसने जगाया,
कर गया है कौन फिर भिनसार,
वीणा बोलती है,

छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है !

२

रश्मियो मे रँग पहन ली आज
किसने लाल सारी,
फूल-कलियो से प्रकृति ने माँग
है किसकी सँवारी
कर रहा है कौन फिर शृगार,
वीणा बोलती है ;
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है !

३

लोक के भय ने भले ही रात
का हो भय मिटाया,
किस लगन ने रात-दिन का भेद
ही मन से हटाया,
कौन करता है खुले अभिसार,
वीणा बोलती है ,
छू गया है कौन मन के तार
वीणा बोलती है !

४

तू जिसे लेने चला था भूल-
कर अस्तित्व अपना,
तू जिसे लेने चला था बेच-
कर अपनत्व अपना,
दे गया है कौन वह उपहार,
वीणा बोलती है,
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है !

जो करुण विनती, मधुर मनुहार
से न कभी पिघलते,
टूटते कर, फूट जाते शीश
तिल भर भी न हिलते,
खुल कभी जाते स्वय वे द्वार,
वीणा बोलती है,
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है!

६

भूल तू जा अब पुराना गीत
औ' गाथा पुरानी,
भूल तू जा अब दुखो का राग
दुर्दिन की कहानी,
ले नया जीवन, नई झनकार
वीणा बोलती है,
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है!

तुम मुझे पुकार लो

इसीलिए खडा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो!
ज़मीन है न बोलती
न आसमान बोलता,
जहान देखकर मुझे
नही ज़बान खोलता,
नही जगह कही जहाँ
न अजनबी गिना गया,

कहाँ-कहाँ न फिर चुका
दिमाग-दिल टटोलता,
कहाँ मनुष्य है कि जो
उमीद छोडकर जिया,
इसीलिए अडा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो;
इसीलिए खडा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो !

२

तिमिर-समुद्र कर सकी
न पार नेत्र की तरी,
विनष्ट स्वप्न से लदी,
विषाद याद से भरी,
न कूल भूमि का मिला,
न कोर भोर की मिली,
न कट सकी, न घट सकी
विरह-घिरी विभावरी,
कहाँ मनुष्य है जिसे
कमी खली न प्यार की,
इसीलिए खडा रहा
कि तुम मुझे दुलार लो !
इसीलिए खडा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो !

३

उजाड से लगा चुका
उम्मीद मैं बहार की,
निदाघ से उमीद की,
बसंत के बयार की,

मरुस्थली मरीचिका
सुधामयी मुझे लगी,
अँगार से लगा चुका,
उमीद मैं तुषार की,
कहाँ मनुष्य है जिसे
न भूल शूल-सी गड़ी,
इसीलिए खड़ा रहा
कि भूल तुम सुधार लो!
इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो!
पुकार कर दुलार लो,
दुलार कर सुधार लो!

तुम गा दो मेरा गान

तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

१

मेरे वर्ण-वर्ण विशृंखल,
चरण-चरण भरमाए,
गूँज-गूँजकर मिटनेवाले
मैंने गीत बनाए,
कूक हो गई हूक गगन की
कोकिल के कंठों पर,
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

२

जब-जब जग ने कर फैलाए,
मैंने कोष लुटाया,
रंक हुआ मैं निज निधि खोकर
जगती ने क्या पाया!

भेंट न जिसमे मै कुछ खोऊँ
पर तुम सब कुछ पाओ,
तुम ले लो, मेरा दान अमर हो जाए!
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

३

सुदर और असुदर जग मे
मैने क्या न सराहा,
इतनी ममतामय दुनिया मे
मै केवल अनचाहा,
देखूँ अब किसको रुकती है
आ मुझपर अभिलाषा,
तुम रख लो, मेरा मान अमर हो जाए!
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

४

दुख से जीवन बीता फिर भी
शेष अभी कुछ रहता,
जीवन की अंतिम घडियों मे
भी तुमसे यह कहता,
सुख की एक साँस पर होता
है अमरत्व निछावर,
तुम छू दो, मेरा प्राण अमर हो जाए!
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

बंगाल का काल

....हमने

अर्थ भूख का कभी न जाना,
हमे भूख का अर्थ बताना,
भूखो, इसको आज समझ लो,
मरने का यह नही बहाना।

फिर से जीवित,
फिर से जाग्रत,
फिर से उन्नत
होने का है भूख निमत्रण,
है आवाहन।

भूख नही दुर्बल, निर्बल है,
भूख सबल है,
भूख प्रबल है,
भूख अटल है,
भूख कालिका है, काली है,
या काली सर्वभूतेषु
        क्षुधारूपेण संस्थिता,

नमस्तस्यै, नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै, नमोनम.।
भूख प्रचण्ड शक्तिशाली है,
या चडी सर्वभूतेषु
क्षुधारूपेण सस्थिता
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै, नमोनम.।

भूख अखड शौयशाली है,
या देवी सर्वभूतेषु
क्षुधारूपेण सस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै, नमोनम.।

भूख भवानी भयावनी है,
अगणित पद, मुख, कर वाली है
बडे विशाल उदर वाली है।
भूख धरा पर जब चलती है,
वह डगमग-डगमग हिलती है।
वह अन्याय चबा जाती है,
अन्यायी को खा जाती है,
और निगल जाती है पल मे
आततायियो का दु शासन,
हडप चुकी अब तक कितने ही
अत्याचारी सम्राटो के
छत्र, किरीट, दड, सिहासन !

नही यकीन तुम्हे आता है ?
नही सुनाई तुम्हे किसी ने

कभी फ्रास की क्राति अभी तक ?
भूखो ने की क्राति वहाँ थी।
जब पेरिस भूखो मरता था
बच्चो से लेकर बूढे तक
क्षीण हो रहे थे दिन-प्रतिदिन,
तब मेज़ो की जूठन खाकर,
खूब अघाकर,
मोटा रहे थे वरसाई के कुत्ते-कुत्ते ।

एक सबेरे
बेटे ने भूखी मा देखी !
पति ने भूखी पत्नी देखी !
मा ने देखे बच्चे !
और एक निश्चय से सारा
पेरिस पल मे एक हो गया !

सडक-सड़क से, हाट-हाट से,
गली-गली से, बाट-बाट से,
घर-घर से औ' घाट-घाट से,
दर-दर से औ' दूकानो से,
दफ्तर से औ' दीवानो से,
होटल से, काफीखानो से,
दूर-दूर से, पास-पास से
एक उठी आवाज और वह
गूँज गई सम्पूर्ण नगर मे—

एलो[1] - एलो, एलो - एलो !
चलो चलें, चले चलो !

---

१. एलो फ्रासीसी शब्द है, अर्थ है 'आओ चले'

घर छोडो बाहर निकलो।
जो जिसके हथियार लग गया
हाथ वही वह लेकर निकला,
कोई ले बदूक पुरानी,
कोई ले तलवार दुधारी,
कोई बल्लम, कोई फरसा,
कोई बरछी, कोई बरछा,
कोई भाला, कोई नेजा,
कोई सीधा, कोई तिरछा,
कोई छूरी और कटारी,
कोई छूरा और भुजाली,
कौन रोकता उसका वेग,
कौन रोकता उसका नाद?
इन्कलाब ज़िन्दाबाद!
सब मनुष्य है एक समान,
इन्कलाब जिन्दाबाद!
एक विधाता की सन्तान,
इन्कलाब ज़िन्दाबाद!
सब आजादी के हकदार!
इन्कलाब ज़िन्दाबाद!
स्वतन्त्रता के दावेदार,
इन्कलाब ज़िन्दाबाद!
नही किसी को है अधिकार,
इन्कलाब ज़िन्दाबाद!
करे किसी पर अत्याचार,
इन्कलाब जिन्दाबाद! ··

४९

न जीवन है रोने का ठौर,
न जीवन खुश होने का ठौर,
न होने का अनुरक्त, विरक्त,
अगर देखो कुछ करके गौर,
कभी तो उठती मन मे बात
कि बस सब धुन-धंधो को छोड,
एक अचरज से मुख-दृग खोल
एक टक देखूँ जग की ओर।

५०

जगत है चक्की एक विराट
पाट दो जिसके दीर्घाकार—
गगन जिसका ऊपर फैलाव
अवनि जिसका नीचे विस्तार,
नही इसमे पडने का खेद,
मुझे तो यह करता हैरान,
कि घिसता है यह यत्र महान
कि पिसता है यह लघु इसान!

५८

एक दिन बुझ जाएगा सूर्य
प्रकाशित जिससे सब ससार,
एक दिन बुझ जाएगा चाँद
निशा का सुन्दरतम शृंगार,
एक दिन बुझ जाएँगे दीप
गगन के सब, खद्योत, विचार—
अर्थ क्या रखता बुझना सोच
मचाना तेरा हाहाकार।

१०६

देखकर तुझको रचना-मग्न
निरतर सहारो के बीच
करेगा जो तेरा उपहास
सृष्टि के नीचो मे वह नीच,
मर्त्य की मिट्टी तू म्रियमाण
साधना तेरी सब स्वर्गीय,
दैवतो मे तू ईर्ष्या-पात्र,
मानवो मे तू हो दयनीय।

१३८

हलाहल पीकर लेगा जान
कि तू है कितना महिमावान,
नही है उनमे तेरा स्थान
कि जिनका होता है अवसान,
हुई है फिर-फिर जग की सृष्टि,
हुआ है फिर-फिर जग का नाश,
कि तू दोनो स्थितियो से भिन्न
तुझे हो फिर-फिर यह विश्वास।

खादी के फूल

था उचित कि गाधी जी की निर्मम हत्या पर
तारे छिप जाते, काला हो जाता अबर,
केवल कलक अवशिष्ट चद्रमा रह जाता,
कुछ और नजारा
था जब ऊपर
गई नजर ।

अबर मे एक प्रतीक्षा का कौतूहल था,
तारो का आनन पहले से भी उज्ज्वल था,
वे पथ किसीका जैसे ज्योतित करते हो,
नभ वात किसीके
स्वागत मे
चिर चचल था ।

उस महाशोक मे भी मन मे अभिमान हुआ,
धरती के ऊपर कुछ ऐसा बलिदान हुआ,
प्रतिफलित हुआ धरणी के तप से कुछ ऐसा,

जिसका अमरो
के आँगन मे
सम्मान हुआ।
अपनी गौरव से अकित हो नभ के लेखे,
क्या लिए देवताओ ने हा यश के ठेके,
अवतार स्वर्ग का ही पृथ्वी ने जाना
पृथ्वी का अभ्युत्थान
स्वर्ग भी तो
देखे!

सूत की माला

४८

वे कौन जाति का तत्व दबाए थे तन मे,
वे कौन कौम का सार छिपाए थे मन मे,
उनके जाते ही देश खोखला लगता है,
अब क्यो कोई
दुनिया मे उससे अनुरागे।
वे एक गए, सूना-सूना सब देश हुआ,
वे एक गए, निस्तेज देश नि शेष हुआ,
अब दीप जलाना एक चोचला लगता है,
है अधकार
ही अधकार पीछे-आगे।
भारत के गोशे-गोशे मे वे पैठे थे,
हर एक क्षेत्र मे अगुआ बनकर बैठे थे,
वे धैर्य बँधाने वाले भी तो एक रहे,
हम, हाय, एक के ऊपर कितना ऐठे थे,
किससे अब देश
अभागा यह धीरज माँगे।

मिलन यामिनी

१ (पूर्व भाग)

चाँदनी फैली गगन मे चाह मन मे।

दिवस मे सबके लिए बस एक जग है,
रात मे हर एक की दुनिया अलग है,
कल्पना करने लगी अब राह मन मे,
चाँदनी फैली गगन मे, चाह मन मे।

भूमि का उर तप्त करता चद्र शीतल,
व्योम की छाती जुडाती रश्मि कोमल,
किंतु भरती भावनाएँ दाह मन मे,
चाँदनी फैली गगन मे, चाह मन मे।

कुछ अँधेरा, कुछ उजाला क्या समा है,
कुछ करो, इस चाँदनी मे सब क्षमा है,
किंतु बैठा मै सँजोए आह मन मे,
चाँदनी फैली गगन मे, चाह मन मे।

चाँद निखरा, चद्रिका निखरी हुई है,
भूमि से आकाश तक बिखरी हुई है,
काश मै भी यो बिखर सकता भुवन मे,
चाँदनी फैली गगन मे, चाह मन मे।

२४ (मध्य भाग)

बद्ध तुम्हारे भुजपाशो मे,
और कहो क्या बधन मानूँ।
यह घन कुतल राशि नही है
पर्दा है जग की आँखो पर,
अधरो पर मधु बिदु नही है
आया रस का सिंधु सिमट कर,
श्वास नही, प्रश्वास नही है
मलयानिल के भावुक झोके,
पुलकित रोमो मे सुख मुखरित
तन की मिट्टी का मादक स्वर,
नयनो की यह जोत नही है,
यह है स्वर्गो का आमत्रण
लुब्ध, मुग्ध, लवलीन तुम्ही मे
अब किसका आकर्षण मानूँ,
बद्ध तुम्हारे भुजपाशो मे,
और कहो क्या बधन मानूँ।

२६

प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।
अरमानो की एक निशा मे,
होती है कै घडियाँ,
आग दबा रक्खी है मैंने
जो छूटी, फुलझडियाँ,
मेरी सीमित भाग्य परिधि को
और करो मत छोटी,
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।
अधर पुटो मे बद अभी तक
थी अधरो की वाणी

'हाँ-ना' से मुखरित हो पाई
किसकी प्रणय कहानी,
सिर्फ भूमिका थी जो कुछ
सकोच - भरे पल बोले,
प्रिय, शेष बहुत है बात अभी मत जाओ,
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

शिथिल पडी है नभ की बाहो
मे रजनी की काया,
चॉद चॉदनी की मदिरा मे,
है डूबा, भरमाया,
अलि अब तक भूले-भूले-मे
रस-भीनी गलियो मे,
प्रिय, मौन खडे जलजात अभी मत जाओ;
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

रात बुझाएगी सच - सपने
की अनबूझ पहेली
किसी तरह दिन बहलाता है
सबके प्राण, सहेली,
तारो के झॅपने तक अपने
मन को दृढ कर लूँगा,
प्रिय, दूर बहुत है प्रात अभी मत जाओ;
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

३३

जीवन की आपाधापी मे कब वक्त मिला
कुछ देर कही पर बैठ कभी यह सोच सकूँ,
जो किया, कहा, माना उसमे क्या बुरा-भला।
जिस दिन मेरी चेतना जगी मैंने देखा
मैं खडा हुआ हूँ इस दुनिया के मेले मे,

हर एक यहाँ पर एक भुलाने मे भूला,
हर एक लगा है अपनी-अपनी दे-ले मे
कुछ देर रहा हक्का-बक्का, भौचक्का-सा,
आ गया कहाँ, क्या करूँ यहाँ, जाऊँ किस जा ?
फिर एक तरफ से आया ही तो धक्का-सा,
मैने भी बहना शुरू किया उस रेले मे,
क्या बाहर की ठेला-पेली ही कुछ कम थी,
जो भीतर भी भावो का ऊहापोह मचा,
जो किया, उसीको करने की मजबूरी थी,
जो कहा, वही मन के अन्दर से उबल चला,
जीवन की आपाधापी मे कब वक्त मिला
कुछ देर कही पर बैठ कभी यह सोच सकूँ
जो किया, कहा, माना उसमे क्या बुरा-भला ।

मेला जितना भडकीला रग-रँगीला था,
मानस के अन्दर उतनी ही कमजोरी थी,
जितना ज्यादा सचित करने की ख्वाहिश थी,
उतनी ही छोटी अपने कर की झोरी थी,
जितनी ही बिरमे रहने की थी अभिलाषा,
उतना ही रेले तेज ढकेले जाते थे,
क्रय-विक्रय तो ठण्डे दिल मे हो सकता है,
यह तो भागा-भागी की छीना-छोरी थी,
अब मुझसे पूछा जाता है क्या बतलाऊँ
क्या मान अकिंचन बिखराता पथ पर आया,
वह कौन रतन अनमोल मिला ऐसा मुझको,
जिसपर अपना मन प्राण निछावर कर आया,
यह थी तकदीरी बात मुझे गुण दोष न दो
जिसको समझा था सोना, वह मिट्टी निकली,
जिसको समझा था आँसू, वह मोती निकला ।

जीवन की आपाधापी मे कब वक्त मिला
कुछ देर कही पर बैठ कभी यह सोच सकूँ,
जो किया, कहा, माना उसमे क्या बुरा-भला।
मै कितना ही भूलूँ, भटकूँ या भरमाऊँ,
है एक कही मजिल जो मुझे बुलाती है,
कितने ही मेरे पाँव पडे ऊँचे-नीचे,
प्रतिपल वह मेरे पास चली ही आती है,
मुझपर विधि का आभार बहुत-सी बातो का।
पर मै कृतज्ञ उसका इसपर सबसे ज्यादा—
नभ ओले बरसाए, धरती शोले उगले,
अनवरत समय की चक्की चलती जाती है,
मै जहाँ खडा था कल उस थल पर आज नही,
कल इसी जगह फिर पाना मुझको मुश्किल है,
ले मापदड जिसको परिवर्तित कर देती
केवल छूकर ही देश-काल की सीमाएँ
जग दे मुझपर फैसला उसे जैसा भाए
लेकिन मै तो बेरोक सफर मे जीवन के
इस एक और पहलू से होकर निकल चला।
जीवन की आपाधापी मे कब वक्त मिला
कुछ देर कही पर बैठ कभी यहाँ सोच सकूँ,
जो किया, कहा, माना उसमे क्या भला-बुरा।

प्रणय-पत्रिका

८

सो न सकूँगा और न तुझको सोने दूँगा, हे मन-बीने।
इसीलिए क्या मैने तुझसे
साँसो के सबध बनाए,
मै रह-रहकर करवट लूँ तू
मुख पर डाल केश सो जाए,
रैन अधेरी, जग जा गोरी,
माफ आज की हो बरजोरी
सो न सकूँगा और न तुझको सोने दूँगा, हे मन-बीने।
सेज सजा सब दुनिया सोई
यह तो कोई तर्क नही है,
क्या मुझमे-तुझमे, दुनिया मे
सच कह दे, कुछ फर्क नही है,
स्वार्थ-प्रपचो के दु:स्वप्नो
मे वह खोई, लेकिन मै तो
खो न सकूँगा और न तुझको खोने दूँगा, हे मन-बीने।
सो न सकूँगा और न तुझको सोने दूँगा, हे मन-बीने।
जाग छेड दे एक तराना
दूर अभी है भोर, सहेली,

जगहर सुनकर के भी अक्सर
भग जाते है चोर सहेली,
सधी-बदी-सी चुप्पी मारे
जग लेटा लेकिन चुप मै तो
हो न सकूँगा और न तुझको होने दूँगा, हे मन-बीने ।
सो न सकूँगा और न तुझको सोने दूँगा, हे मन-बीने ।
गीत चेतना के सिर कलँगी,
गीत खुशी के मुख पर सेहरा,
गीत विजय की कीर्ति पताका,
गीत नीद गफलत पर पहरा,
पीडा का स्वर आँसू लेकिन
पीडा की सीमा पर मै तो
रो न सकूँगा और न तुझको रोने दूँगा, हे मन-बीने ।
सो न सकूँगा और न तुझको सोने दूँगा, हे मन-बीने ।

१६

नयन तुम्हारे चरण-कमल मे अर्घ्य चढा फिर-फिर भर आते ।
कब प्रसन्न, अवसन्न हुए कब,
है कोई जिसने यह जाना ?
नही तुम्हारी मुख मुद्रा ने
सीखा इसका भेद बताना,
ज्ञात मुझे, पर, अब तक मेरी
पूर्ण नही पूजा हो पाई,
नयन तुम्हारे चरण-कमल मे अर्घ्य चढा फिर-फिर भर आते ।
यह मेरा दुर्भाग्य नही है
जो आँसू की धार बहाता,
कस उसको अपनी साँसो मे,
अब तो मै सगीत बनाता,
और सुनाता उनको जिनको
दुख-दर्दो ने अपनाया है,

मेरे ऐसे यत्न तुम्हारे पास भला कैसे आ पाते।
नयन तुम्हारे चरण-कमल मे अर्घ्य चढा फिर-फिर भर आते।

और न मेरे मन के अन्दर
किसी तरह का पछतावा है,
मै मानव हूँ और रहूँगा,
इतना ही मेरा दावा है,

पशुओ ने कब प्यार किया है,
कब वे सुदरता पर बिखरे?

शक्ति-सुरुचि दोनो से वचित ही इनको दुर्गुण बतलाते।
नयन तुम्हारे चरण-कमल मे अर्घ्य चढा फिर-फिर भर आते।

इस जल-कण माला का मतलब
साफ यही तक हो पाया है,
ऐसा लगता दूर कही से
भार हृदय ढोकर लाया है,

अनायास, अनजान, प्रयोजन-
हीन समर्पण करके तुमको

अतर का कुछ श्रम कम होता औ' कुछ-कुछ लोचन हलकाते।
नयन तुम्हारे चरण-कमल मे अर्घ्य चढा फिर-फिर भर आते।

३१

रात आधी, खीचकर मेरी हथेली एक उँगली से लिखा था
'प्यार' तुमने।

फासला कुछ था हमारे बिस्तरो मे
और चारो ओर दुनिया सो रही थी,
तारिकाएँ ही गगन की जानती है
जो दशा दिल की तुम्हारे हो रही थी,

मै तुम्हारे पास होकर दूर तुमसे
अधजगा-सा और अधसोया हुआ था,

रात आधी, खीचकर मेरी हथेली एक उँगली से लिखा था
'प्यार' तुमने।

एक बिजली छू गई सहसा जगा मै,
कृष्ण-पक्षी चाँद निकला था गगन मे,
इस तरह करवट पडी थी तुम कि आँसू
बह रहे थे इस नयन से उस नयन मे,
मै लगा दूँ आग उस ससार मे, है
प्यार जिसमे इस तरह असमर्थ कातर,
जानती हो, उस समय क्या कर गुजरने
के लिए था कर दिया तैयार तुमने ?
रात आधी, खीचकर मेरी हथेली एक उँगली से लिखा था
'प्यार' तुमने ।

प्रात ही की ओर को है रात चलती
औ' उजाले मे अधेरा डूब जाता,
मच ही पूरा बदलता कौन ऐसी,
खूबियो के साथ परदे को उठाता,
एक चेहरा-सा लगा तुमने लिया था,
और मैने था उतारा एक चेहरा,
वह निशा का स्वप्न मेरा था कि अपने
पर गजब का था किया अधिकार तुमने।
रात आधी, खीचकर मेरी हथेली एक उँगली से लिखा था
'प्यार' तुमने ।

और उतने फासले पर आज तक सौ
यत्न करके भी न आए फिर कभी हम,
फिर न आया वक्त वैसा, फिर न मौका
उस तरह का, फिर न लौटा चाँद निर्मम
और अपनी वेदना मैं क्या बताऊँ,
क्या नही ये पक्तियाँ खुद बोलती है—
बुझ नही पाया अभी तक उस समय जो
रख दिया था हाथ पर अगार तुमने ।

रात आधी, खींचकर मेरी हथेली एक उँगली से लिखा था
'प्यार' तुमने।

४५

कौन हंसिनियाँ लुभाए है तुझे ऐसा कि तुझको मानसर भूला
हुआ है?

कौन लहरें है कि जो दबती-उभरती
छातियों पर है तुझे झूला झुलाती?
कौन लहरें है कि तुझपर फेन का कर
लेप, तेरे पंख सहलाकर सुलाती?
कौन-सी मधु गंध बहती है पवन में
साँस के जो साथ अंतर में समाती!

कौन हंसिनियाँ लुभाए है तुझे ऐसा कि तुझको मानसर भूला
हुआ है?

कौन श्यामल, श्वेत औ' रतनार नीरज
के निकुंजों ने तुझे भरमा लिया है?
कौन हालाहल, अमीरस और मदिरा
से भरे लबरेज प्यालों को पिया है
इस कदर तूने कि तुझको आज मरना
और जीना और झुक-झुक झूमना सब
एक-सा है? किस कमल के नाल की
जादू-छड़ी ने आज तेरा मन छुआ है?

कौन हंसिनियाँ लुभाए है तुझे ऐसा कि तुझको मानसर भूला
हुआ है?

मानसर फैला हुआ है, पर, प्रतीक्षा
के मुकुर-सा मौन औ' गंभीर बनकर
और ऊपर एक सीमाहीन अंबर,
और नीचे एक सीमाहीन अंबर
औ' अडिग विश्वास का है श्वास चलता
पूछता-सा डोलता तिनका नहीं है—

प्राण की बाजी लगाकर खेलता है जो
कभी क्या हारता वह भी जुआ है ?
कौन हंसिनियाँ लुभाए है तुझे ऐसा कि तुझको मानसर भूला
हुआ है ?

५२

मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी, प्रिय, तुम आते, तब क्या होता !
मौन रात इस भाँति कि जैसे
कोई गत वीणा पर बजकर
अभी-अभी सोई खोई-सी
सपनो मे तारो पर सिर धर,
और दिशाओ से प्रतिध्वनियाँ
जाग्रत सुधियो-सी आती है,
कान तुम्हारी तान कही से यदि सुन पाते, तब क्या होता !
मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी, प्रिय, तुम आते, तब क्या होता !
उत्सुकता की अकुलाहट मे
मैने पलक पाँवडे डाले,
अबर तो मशहूर कि सब दिन
रहता अपना होश सँभाले,
तारो की महफिल ने अपनी
आँख बिछा दी किस आशा से,
मेरी मौन कुटी को आते तुम दिख जाते, तब क्या होता !
मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी प्रिय, तुम आते, तब क्या होता !
तुमने कब दी बात रात के
सूने मे तुम आने वाले
पर ऐसे ही वक्त प्राण-मन
मेरे हो उठते मतवाले,
साँसे भूल-भूल फिर-फिर से
असमजस के क्षण गिनती है,

मिलने की घड़ियाँ तुम निश्चित यदि कर जाते, तब क्या होता !
मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी, प्रिय, तुम आते, तब क्या होता !

बैठ कल्पना करता हूँ पग-
चाप तुम्हारी मग से आती
रग-रग से चेतना खुलकर
आँसू के कण-सी झर जाती,

नमक डली-सा गल अपनापन,
सागर मे घुल-मिल-सा जाता,

अपनी बाहो मे भरकर, प्रिय, कठ लगाते, तब क्या होता !
मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी, प्रिय, तुम आते, तब क्या होता !

धार के इधर-उधर

चेतावनी

१ जगो कि तुम हजार साल सो चुके,
जगो कि तुम हजार साल खो चुके,
जहान सब सजग-सचेत आज तो,
तुम्ही रहो
पड़े हुए
न बेखबर।

२ उठो चुनौतियाँ मिली, जवाब दो
कदीम कौम-नस्ल का हिसाब दो
उठो स्वराज्य के लिए खिराज दो,
उठो स्वदेश
के लिए
कसो कमर।

३. बढो गनीम सामने खडा हुआ,
बढो निशान जग का गडा हुआ,
सुयश मिला कभी नही पडा हुआ,
मिटो मगर
लगे न दाग
देश पर।

आरती और अंगारे

३६

ओ सॉची के शिल्प साधको, बनो प्रेरणा मेरे मन की।
दो सहस्र वर्षों के पहले
महाकाव्य जो पाषाणो मे
तुमने लिखा, उसे पढ पाना
था मेरे उन अरमानों में
जिनके पूरा हुए बिना मैं
अपना जन्म अधूरा कहता,
ओ सॉची के शिल्प साधको, बनो प्रेरणा मेरे मन की।
काल, प्रकृति, दानव, मानव के
दुसह कराघातों को सहते,
ऊँचा अपना भाल उठाए
अपनी पुण्य कथा तुम कहते,
अनहद नाद तुम्हारा सुनकर—
सुना, अनसुना भी बहुतो को—
कोई कह सकता है उसने बात सुनी गभीर गगन की।
ओ साँची के शिल्प साधको, बनो प्रेरणा मेरे मन की।
कहाँ गए औजार कि जिनसे
तुमने ये रेखाएँ आँकी,

कहाँ यन्त्र-कल रची जिन्होने
कुशल तुम्हारी छेनी-टाँकी,
कहाँ गए वे साँचे जिनमे
ये नैसर्गिक रूप ढले थे,
ये जिज्ञासाएँ सदियो तक बनी रहेगी विषय मननं की।
ओ साँची के शिल्प साधको, बनो प्रेरणा मेरे मन की।
कला नही बसती पत्थर मे,
स्वर मे, रगो की श्रेणी मे
बाजतर मे, कठ, लेखनी
मे. तूली, कीली, छेनी मे;
कोई मदर जब जन-अतर
मथन करता, स्वप्न उघरते,
कला उभरती, कविता उठती,
कीर्ति निखरती, विभव बिखरते,
मैंने भी देखी है ऐसी एक बडी हलचल जीवन की!
ओ साँची के शिल्प साधको, बनो प्रेरणा मेरे मन की।

५४

गर्म लोहा पीट, ठंडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है।
सख्त पजा, नस-कसी चौडी कलाई
और बल्लेदार बाँहे,
और आँखे लाल चिन्गारी सरीखी,
चुस्त औ' तीखी निगाहे,
हाथ मे घन, और दो लोहे निहाई
पर धरे तो देखता क्या;
गर्म लोहा पीटा, ठडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है।
भीग उठता है, पसीने से नहाता
एक से जो जूझता है,
जोम मे तुझको जवानी के न जाने
खब्त क्या-क्या सूझता है,

या किसी नभ देवता ने ध्येय से कुछ
फेर दी यो बुद्धि तेरी,
कुछ बडा, तुझको बनाना है कि तेरा इम्तहॉ होता कडा है
गर्म लोहा पीट, ठडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है
एक गज छाती मगर सौ गज बराबर
हौसला उसमे, सही है;
कान करनी चाहिए जो कुछ तजुर्बे-
कार लोगो ने कही है,
स्वप्न से लड स्वप्न की ही शक्ल मे है
लौह के टुकडे बदलते,
लौह-सा वह ठोस बनकर है निकलता जो कि लोहे से लडा है
गर्म लोहा पीट, ठडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है
घन-हथौडे और तौले हाथ की दे
चोट अब तलवार गढ तू,
और है किस चीज की तुझसे भविष्यत
मॉग करता, आज पढ तू,
औ' अमित संतान को अपनी थमा जा
धारवाली यह धरोहर,
वह अजित संसार मे है शब्द का खर खड्ग लेकर जो खडा है
गर्म लोहा पीट, ठडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है

बुद्ध और नाचघर

नीम के दो पेड़

"तुम न समझोगे,
शहर से आ रहे हो,
हम गँवारो की गँवारी बात ।
शहर,
जिसमे है मदरसे और कालिज
ज्ञान-मद से झूमते उस्ताद जिनमे
नित नई से नई,
मोटी पुस्तके पढते, पढाते,
और लडके घोखते, रटते उन्हे नित,
ज्ञान ऐसा रत्न ही है,
जो बिना मेहनत, मशक्कत
मिल नही सकता किसी को ।
फिर वहाँ विज्ञान-बिजली का उजाला
जो कि हरता बुद्धि पर छाया अँधेरा,
रात को भी दिन बनाता ।
इस तरह का ज्ञान औ' विज्ञान
पच्छिम की सुनहरी सभ्यता का

कीमती वरदान है
जो आ तुम्हारे बडे शहरो मे
इकट्ठा हो गया है।
और तुम कहते कि यह दुर्भाग्य है जो
गाँव मे पहुँचा नही है,
और हम अपने गँवरपन मे समझते,
खैरियत है गाँव इनसे बच गए है।
सहज मे जो ज्ञान मिल जाए
हमारा धन वही है,
सहज मे विश्वास जिस पर टिक रहे
पूँजी हमारी,
बुद्धि की आँखे हमारी बद रहती,
पर हृदय का नेत्र जब-तब खोलते हम,—
और इनके बल युगो से
हम चले आए, युगो तक
हम चले जाते रहेगे।
और यह भी है सहज विश्वास,
सहजज्ञान,
सहजऽनुभूति,
कारण पूछना मत।
इस तरह से है यहाँ विख्यात,
मैंने यह लडकपन मे सुना था,
और मेरे बाप को भी यह लडकपन मे
बताया गया था,
बाबा लड़कपन मे बडो से सुन चुके थे,
और अपने पुत्र को मैंने बताया है
कि तुलसीदास आए थे यहाँ पर,
तीर्थ-यात्रा के लिए निकले हुए थे,
पाँव नंगे,

वृद्ध थे वे किंतु पैदल जा रहे थे,
हो गई थी रात,
ठहरे थे कुएँ पर,
एक साधू की यहाँ पर झोपडी थी,
फलाहारी थे, धरा पर लेटते थे,
और बस्ती मे कभी जाते नही थे,
रात से ज्यादा कही रुकते नही थे,
उस समय वे राम का बनवास
लिखने मे लगे थे।
रात बीते
उठे ब्राह्म मुहूर्त मे,
नित्यक्रिया की,
चीर दाँतन जीभ छीली,
और उसके टूक दो खोसे धरणि मे,
और कुछ दिन बाद उनसे
नीम के दो पेड़ निकले,
साथ-साथ बडे हुए,
नभ मे उठे औ'
उस समय से
आज के दिन तक खडे है।"

मैं लडकपन मे
पिता के साथ
उस थल पर गया था।
यह कथन सुनकर पिता ने
उस जगह को सिर नवाया
और कुछ सदेह से, कुछ व्यंग्य से
मै मुसकराया।

बालपन मे
था अचेत, विमूढ इतना
गूढता मै उस कथा की
कुछ न समझा।
किंतु जब अब
अध्ययन, अनुभव तथा सस्कार से मै
हू नही अनभिज्ञ
तुलसी की कला से,
शक्ति से, सजीवनी से,
उस कथा को
याद करके सोचता हूँ
हाथ जिसका छू
कलम ने वह बहाई धार
जिसने शात कर दी
कोटिको के दग्ध कठो की पिपासा,
सीच दी खेती युगो की मुर्झुराई,
औ' जिला दी एक मुर्दा जाति पूरी,
जीभ उसकी छू
अगर दो दाँतनो से
नीम के दो पेड निकले
तो बडा अचरज हुआ क्या।
और यह विश्वास
भारत के सहज भोले जनो का
भव्य तुलसी के कलम की
दिव्य महिमा
व्यक्त करने का
कवित्व-भरा तरीका।

मै कभी दो पुत्र अपने
साथ ले उस पुण्य थल को
देखना फिर चाहता हूँ।
क्योकि प्रायश्चित न मेरा
पूर्ण होगा
उस जगह बे सिर नवाए।
और सभव है कि मेरे पुत्र दोनो
व्यग से, सदेह से कुछ मुसकराएँ।

चोटी की बरफ़

स्फटिक-निर्मल
और दर्पण-स्वच्छ,
हे हिम-खड, शीतल औ' समुज्ज्वल,
तुम चमकते इस तरह हो,
चाँदनी जैसे जमी है
या गला चाँदी
तुम्हारे रूप मे ढाली गई है।
स्फटिक-निर्मल
और दर्पण-स्वच्छ
हे हिम-खड, शीतल औ' समुज्ज्वल
जब तलक गल-पिघल,
नीचे को ढलककर
तुम न मिट्टी से मिलोगे,
तब तलक तुम
तृण हरित बन,
व्यक्त धरती का नही रोमाच
हरगिज कर सकोगे,
औ' न उसके हास बन
रगीन कलियो

और फूलो मे खिलोगे,
औ' न उनकी वेदना के अश्रु बनकर
प्रात पलको मे पखुरियो के पलोगे।
जड सुयश,
निर्जीव कीर्ति कलाप
औ' मुर्दा विशेषण का
तुम्हे अभिमान,
तो आदर्श तुम मेरे नही हो।
पकमय,
सकलक मैं,
मिट्टी लिए मैं अक मे—
मिट्टी,
कि जो गाती,
कि जो रोती,
कि जो है जागती-सोती,
कि जो है पाप मे धँसती,
कि जो है पाप को धोती,
कि जो पल-पल बदलती है,
कि जिसमे ज़िदगी की गत मचलती है।
तुम्हे लेकिन गुमान—
ली समय ने
साँस पहली
जिस दिवस से
तुम चमकते आ रहे हो
स्फटिक-दर्पण के समान।'
मूढ, तुमने कब दिया है इम्तहान ?
जो विधाता ने दिया था फेंक
गुण वह एक
हाथों दाब,

छाती से सटाए
तुम सदा से हो चले आए,
तुम्हारा बस यही आख्यान !
उसका क्या किया उपयोग तुमने ?
भोग तुमने ?
प्रश्न पूछा जायगा, सोचा जवाब ?
उतर आओ
और मिट्टी मे सनो,
जिदा बनो,
यह कोढ छोडो,
रग लाओ,
खिलखिलाओ,
महमहाओ ।
तोडते है प्रेयसी-प्रियतम तुम्हे ?
सौभाग्य समझो,
हाथ आओ,
साथ जाओ ।

बुद्ध और नाचघर

'बुद्ध सरण गच्छामि,
धम्म सरण गच्छामि,
'सघ सरण गच्छामि'
बुद्ध भगवान,
जहाँ था धन, वैभव, ऐश्वर्य का भडार,
जहाँ था पल-पल पर सुख,
जहाँ था पग-पग पर शृगार,
जहा रूप, रस, यौवन की थी सदा बहार,
वहाँ पर लेकर जन्म,
वहाँ पर पल, बढ, पाकर विकास,

कहाँ से तुममे जाग उठा
अपने चारो ओर के ससार पर
सदेह, अविश्वास ?
और अचानक एक दिन
तुमने उठा ही तो लिया
उस कनक-घट का ढक्कन,
पाया उसे विष-रस भरा।
दुल्हन की जिसे पहनाई गई थी पोशाक,
वह तो थी सडी गली लाश।
तुम रहे अवाक्,
हुए हैरान,
क्यो अपन को धोखे मे रक्खे है इसान,
क्यो वह पी रहा है विष के घूँट,
जो निकलता है फूट-फूट ?
क्या यही है सुख-साज
कि मनुष्य खुजला रहा अपनी खाज ?
जीवन है एक चुभा हुआ तीर
छटपटाता मन, तडफडाता शरीर।
सच्चाई है—सिद्ध करने की जरूरत है ?—
पीर, पीर, पीर।
तीर को दो पहले निकाल,
किसने किया शर का सधान ?
क्यो किया शर का संधान
किस किस्म का है बाण ?
ये है बाद के सवाल।
तीर को दो पहले निकाल।
ध्वनित-प्रतिध्वनित
तुम्हारी वाणी से हुई आधी ज़मीन—
भारत, ब्रह्मा, लका, स्याम,

तिब्बत, मगोलिया, जापान, चीन—
उठ पडे मठ, पैगोडा, विहार,
जिनमे भिक्षुणी, भिक्षुको की कतार
मुडाकार सिर, पीला चीवर धार
करने लगी प्रवेश
करती इस मच का उच्चार .
"बुद्ध सरण गच्छामि,
धम्म सरण गच्छामि,
सघ सरण गच्छामि।"
कुछ दिन चलता है तेज
हर नया प्रवाह,
मनुष्य उठा चौंक, हो गया आगाह।
वाह री मानवता,
तू भी करती है कमाल,
आया करे पीर, पैगम्बर, आचार्य,
महत, महात्मा हजार,
लाया करे अहदनामे इलहाम,
छाँटा करे अक्ल, बघारा करे ज्ञान,
दिया करे प्रवचन, वाज़,
तू एक कान से सुनती,
दूसरे से देती निकाल,
चलती है अपनी समय-सिद्ध चाल।
जहाँ है तेरी बस्तियाँ, तेरे बाज़ार,
तेरे लेन-देन, तेरे कमाई-खर्च के स्थान,
वहाँ कहाँ है
राम, कृष्ण, बुद्ध, मुहम्मद, ईसा के
कोई निशान।
जहाँ खुदा की गली नही दाल,
वहाँ बुद्ध की क्या चलती चाल,

वे थे मूर्ति के खिलाफ,
इसने उन्ही की बनाई मूर्ति
वे थे पूजा के विरुद्ध,
इसने उन्ही को दिया पूज,
उन्हे ईश्वर मे था अविश्वास,
इसने उन्ही को कह दिया भगवान.
वे आए थे फैलाने को वैराग्य,
मिटाने को सिगार-पटार,
इसने उन्ही को बना दिया शृगार।
बनाया उनका सुदर आकार;
उनका बेलमुड था शीश,
इसने लगाए बाल घूँघरदार,
और मिट्टी, लकडी, पत्थर, लोहा,
ताँबा पीतल, चाँदी, सोना,
मूँगा, नीलम, पन्ना, हाथी दाँत—
सबके अदर उन्हे डाल, तराश, खराद, निकाल
बना दिया उन्हे बाजार मे बिकने का सामान।
पेकिग से शिकागो तक
कोई नही क्यूरियो की दूकान
जहाँ, भले ही और न हो कुछ,
बुद्ध की मूर्ति न मिले जो माँगो।
बुद्ध भगवान,
अमीरो के ड्राइगरूम,
रईसो के मकान
तुम्हारे चित्र, तुम्हारी मूर्ति से शोभायमान।
पर वे है तुम्हारे दर्शन से अनभिज्ञ,
तुम्हारे विचारों से अनजान,
सपने मे भी उन्हे इसका नही आता ध्यान।
शेर की खाल, हिरन का सीग

कला-कारीगरी के नमूनो के साथ
तुम भी आसीन,
लोगो की सौदर्य-प्रियता को
देते हुए तसकीन,
इसीलिए तुमने एक की थी
आसमान-जमीन ?
और आज
देखा है मैने,
एक ओर है तुम्हारी प्रतिमा
दूसरी ओर है डासिग हाल,
हे पशुओ पर दया के प्रचारक,
अहिसा के अवतार,
परम विरक्त,
सयम साकार,
मची है तुम्हारे सामने रूप-यौवन की ठेल-पेल,
इच्छा और वासना खुलकर रही है खेल,
गाय-सुअर के गोश्त का उड़ रहा है कबाब
गिलास पर गिलास
पी जा रही है शराब,—
पिया जा रहा है पाइप, सिगरेट, सिगार,
धुआँधार,
लोग हो रहे है नशे मे लाल।
युवको ने युवतियो को खीच
लिया है बाँहो मे भीच,
छाती और सीने आ गए है पास,
होठो-अधरो के बीच
शुरू हो गई है बात,
शुरू हो गया है नाच,
आर्केस्ट्रा के साज—

ट्रम्पेट, क्लरिनेट, कारनेट — पर, साथ
बज उठा है जाज,
निकलती है आवाज :
"मद्य सरण गच्छामि,
मास सरण गच्छामि,
डास सरण गच्छामि ।"

त्रिभंगिमा

पगला मल्लाह

(उत्तरप्रदेश की एक लोकधुन पर आधारित)

डोगा डोले,
नित गग-जमुन के तीर,
डोगा डोले।

आया डोला,
उडनखटोला,
एक परी परदे से निकली पहने पँचरँग चीर
डोगा डोले,
नित गग-जमुन के तीर,
डोगा डोले।

आँखें टक-टक,
छाती धक-धक,
कभी अचानक ही मिल जाता दिल का दामनगीर।
डोगा डोले,

नित गग-जमुन के तीर,
डोले ।

नाव बिराजी,
केवट राजी,
डाँड छुई भर, बस आ पहुँची सगम पर की भीर ।[१]
डोगा डोले,
नित गग-जमुन के तीर,
डोगा डोले,

मन मुसकाई,
उतर नहाई,
'आगे पाँव न देना, रानी, पानी अगम-गभीर ।'
डोगा डोले,
नित गग-जमुन के तीर,
डोगा डोले,

बात न मानी,
होनी जानी,
बहुत थहाई, हाथ न आई जादू की तस्वीर ।
डोगा डोले,
नित गग-जमुन के तीर,
डोगा डोले ।

इस तट, उस तट,
पनघट, मरघट,
बानी अटपट,

१ गीत प्रयाग मे गगा-जमुना के सगम को ध्यान मे रखकर लिखा है । वहाँ पहुँचने के लिए लोगो का गगा या जमुना के तट से एक-डेढ मील नाव से जाना होता है ।

हाय, किसीने कभी न जानी माँझी-मन की पीर।
डोगा डोले,

नित गग-जमुन के तीर,
डोगा डोले। डोगा डोले। डोगा डोले।'

माटी की महक

(ढोलक पर सहगान के लिए
उत्तरप्रदेश की एक लोकधुन पर आधारित)

जिसे माटी की,
जिम माटी की महक न भाए,
उसे नही जीने का हक है।

धूल धरा की नभ पर छाई,
नभ की साँस धरा पर आई,
जिसे झझा की।
जिसे झझा की झनक न भाए,
उसे नही जीने का हक है।
जिसे माटी की महक न भाए,
उसे नही जीने का हक है।

कौन रहा है प्यासा हमेशा ?—
रस की रुत का आया सँदेसा,
जिसे बिजली की,
जिसे बिजली की चमक न भाए,
उसे नही जीने का हक है।
जिसे माटी की महक न भाए,
उसे नही जीने का हक है।

किसने जाना सब दिन सावन ?—
डर घर बैठो मत, मन-भावन !
जो न बरखा मे
जो न बरखा मे भीग नहाए,
उसे नही जीने का हक है।
जिसे माटी की महक न भाए,
उसे नही जीने का हक है।

रे कितना माँगा ! रे कितना पाया !
अच्छा हुआ जो मै न अघाया !
जो न छाती मे,
जो छाती मे कसक छिपाए,
उसे नही जीने का हक है !
जिसे माटी की महक न भाए,
उसे नही जीने का हक है।

जीवन हँसी भी, जीवन रुदन भी,
जीवन खुशी भी, जीवन घुटन भी,
जो न जीवन की,
जो न जीवन की गत पर गाए,
उसे नही जीने का हक है।
जिसे माटी की महक न भाए,
उसे नही जीने का हक है।

चार खेमे चौंसठ खूँटे

वर्षा मंगल

(ढोलक पर सहगान के लिए उत्तरप्रदेश की
एक लोकधुन पर आधारित)

घन बरसे, भीग धरा गमके,
घन बरसे !

यह भूमि भली,
यह बहुत जली,
यह और न अब जल को तरसे,
घन बरसे !
घन बरसे, भीग धरा गमके,
घन बरसे !

परबत भीगे
घर-छत भीगे,
भीगे बन, खेत, कुटी झर से,
घन बरसे !

घन बरसे, भीग धरा गमके,
घन बरसे !

फूटे क्यारी,
नव नर-नारी,
बहके, चहके मधुमय स्वर से,
घन बरसे !
घन बरसे भीग धरा गमके,
घन बरसे !

नव धान उठे,
नव गान उठे,
सबके खेतो से, सब घर से,
घन बरसे !
घन बरसे भीग धरा गमके,
घन बरसे !

ढोलक ठनके,
रूठी मन के,
रूठे प्रियतम के ढिग बिहँसे,
घन बरसे !
घन बरसे, भीग धरा गमके,
घन बरसे !

रसधार गिरे,
दिन सरस फिरे,

पपिहा तरसे न पिया तरसे,
घन बरसे !
घन बरसे, भीग धरा गमके,
घन बरसे !

मालिन बीकानेर की

(बीकानेरी मजदूरिनियों से सुनी एक लोकधुन के आधार पर)
'लाई हूँ फूलों का हार, लोगी मोल, लोगी मोल।'—पंत

फुलमाला ले लो,
लाई है मालिन बीकानेर की।
मालिन बीकानेर की।

बाहर-बाहर बालू-बालू,
भीतर-भीतर बाग है,
बाग-बाग मे हर-हर बिरवे,
धन्य हमारा भाग है,
फूल-फूल पर भौरा, डाली-डाली कोयल टेरती।

फुलमाला ले लो,
लाई है मालिन बीकानेर की।
मालिन बीकानेर की।

धवलपुरी का पक्का धागा,
सूजी जैसलमेर की,
झीनी-बीनी रग-बिरगी
डलिया है अजमेर की,
कलियाँ डूगरपुर, बूँदी की, अलवर की, अबेर की।
फुलमाला ले लो,
लाई है मालिन बीकानेर की।
मालिन बीकानेर की।

ओढनी आधा अबर ढक ले
ऐसी है चित्तौर की,
चोटी है नागौर नगर की
चोली रनथभौर की,
घँघरी आधी धरती ढकती है मेवाडी घेर की।

फुलमाला ले लो,
लाई है मालिन बीकानेर की।
मालिन बीकानेर की।

ऐसी लबी माल कि प्रीतम-
प्यारी पहने साथ मे,
ऐसी छोटी माल कि कगन
बाँधे दोनो हाथ मे,
पल भर मे कलियाँ कुम्हलाती द्वार खडी है देर की !
फुलमाला ले लो,
लाई है मालिन बीकानेर की।
मालिन बीकानेर की।

एक टका धागे की कीमत
पाँच टके है फूल की,
तुमने मेरी कीमत पूछी ?—
भोले, तुमने भूल की।
लाख टके की बोली मेरी !—दुनिया है अधेर की।

फुलमाला ले लो,
लाई है मालिन बीकानेर की।
मालिन बीकानेर की।
सुहागिन बीकानेर की।

दो चट्टानें

खून के छापे

(एक स्वप्न : एक समीक्षा)

सुबह-सुबह उठकर क्या देखता हूँ
कि मेरे द्वार पर
खून रँगे हाथो के कई छापे लगे हैं !
और मेरी पत्नी ने स्वप्न देखा है
कि एक नर-ककाल आधी रात को
एक हाथ मे खून की बाल्टी लिए आता है
और दूसरा हाथ उसमे डुबोकर
हमारे द्वार पर एक छापा लगाकर चला जाता है
फिर एक दूसरा आता है,
फिर दूसरा, फिर दूसरा, फिर दूसरा···फिर···

यह बेगुनाह खून किनका है ?
क्या उनका ?
जो सदियो से सताए गए
जगह-जगह से भगाए गए,

दुख सहने के इतने आदी हो गए
कि विद्रोह के सारे भाव ही खो गए,
और जब मौत के मुँह मे जाने का हुक्म हुआ,
निर्विरोध, चुपचाप चले गए
और उसकी विषैली साँसो मे घुटकर
सदा के लिए सो गए।
उनके रक्त की छाप अगर लगानी थी तो—के द्वार पर।

यह बेजबान खून किनका है ?
क्या उनका ?
जिन्होने आत्महीन शासन के शिकजे की
पकड से, जकड से छूटकर
उठने का, उभरने का प्रयत्न किया था
और उन्हे दाबकर, दलकर, कुचलकर
पीस डाला गया है।
उनके रक्त की छाप अगर लगानी थी तो—के द्वार पर।

यह जवान खून किनका है ?
क्या उनका ?
जो अपनी माटी का गीत गाते,
अपनी आजादी का नारा लगाते,
हाथ उठाते, पाँव बढाते आए थे
पर अब ऐसी चट्टान से टकराकर
अपना सिर फोड रहे है
जो न ढलती है न हिलती है, न पिघलती है।
उनके रक्त की छाप अगर लगानी थी तो—के द्वार पर।

यह मासूम खून किनका है ?
क्या उनका ?

जो अपने श्रम से धूप मे, ताप मे,
धूलि मे, धुएँ मे सन कर, काले होकर
अपने सफेद-खून स्वामियो के लिए
साफ घर, साफ नगर, स्वच्छ पथ
उठाते रहे, बनाते रहे
पर उनपर पाँव रखने, उनमे पैठने का
मूल्य अपने प्राणो से चुकाते रहे।
उनके रक्त की छाप अगर लगानी थी तो—के द्वार पर।

यह बेपनाह खून किनका है ?
क्या उनका ?
जो तवारीख की एक रेख से
अपने ही वतन मे जलावतन है,
जो बहुमत के आवेश पर
सनक पर, पागलपन पर
अपराधी, दड्य और वध्य
करार दिए जाते है,
निर्वास, निधन, निर्वसन,
निर्मम कत्ल किए जाते है।
उनके रक्त की छाप अगर लगानी थी तो—के द्वार पर।

यह बेमालूम खून किनका है ?
क्या उन सपनो का ?
जो एक उगते हुए राष्ट्र की
पलको पर झूले थे, पुतलियो मे पले थे,
पर लोभ ने, स्वार्थ ने, महत्त्वाकाक्षा ने
जिनकी आँखे फोड दी है,
जिनकी गर्दने मरोड दी है।
उनके रक्त की छाप अगर लगानी थी तो—के द्वार पर।

लेकिन इस अमानवीय अत्याचार, अन्याय
अनुचित, अकरणीय, अकरुण का
दायित्व किसने लिया ?
जिसके भी द्वार पर ये छापे लगे उसने
पानी से धुला दिया
चूने से पुता दिया।

किन्तु कवि-द्वार पर
छापे ये लगे रहे,
जो अनीति, अत्ति की
कथा कहे, व्यथा कहे
और शब्द-यज्ञ मे मनुष्य के कलुष दहे।

और मेरी पत्नी ने स्वप्न देखा है
कि ये नर-ककाल
कवि-कवि के द्वार पर
ऐसी छाप लगा रहे है,
ऐसे ही शब्द ज्वाला जगा रहे है।

धरती की सुगंध

आज मै पतझार की
जिन गिरी, सूखी, मुडी, पीली पत्तियो पर
चर्र-चरमर चल रहा हूँ
वे पताकाएँ कभी मधुमास की थी,
मृत्यु पर जीवन,
प्रलय पर सृष्टि का,
या नाश पर निर्माण का
जय घोष करती—हरी, चिकनी, नई
नीची डाल से धुर टुनगुनी तक लगी, छाई,

चाँद, सूरज-किरणमाला की खेलाई,
पवन के झूले झुलाई,
मेघ नहलाई,
पिकी के कूक-स्वर से थरथराई,
सुमन-सौरभ से बसाई।

नील निस्सीमित गगन का
नित्य दुलराया हुआ यह विभव,
यह शृंगार,
जब से सृष्टि विरची गई
कितनी बार
धरती पर गिरा है,
और माटी मे मिला है,
औ' उसी मे भिन गया है !

ओ विभूति-वसुधरा,
मुझको जरा अचरज नही
इतनी विचित्र विमोहिनी तू,
और इतनी उर्वरा है,
और कण प्रत्येक तेरा
राग-लय से भरा,
तेरी गध
अपरा है, परा है।
जो कि तेरी गध से भी
जी न उठता, गुनगुना पडता न
सचमुच ही मरा है।

बहुत दिन बीते

बहुत दिन बीते

ठोस धरा पर
लिए ठोस माटी की काया
मै आया था।

थे दुरुस्त सब अग—
प्रकृति की नव विकासिनी शक्ति समन्वित—
चुस्त-सजग मस्तिष्क
ज्ञान सचित करने को
प्रतिपल तत्पर।

अधिक सचेत हुआ तब मैंने
कसरत से कस,
पुष्ट बनाकर,
स्फूर्ति भरी अपने शरीर में—
वीर्य-ऊर्ज्वस्वित यौवन-वय मे।

विद्यालय से
महा, विश्वविद्यालय मे जा
ज्ञान सँजोया,
नही, ज्ञान सचित करने की विद्या सीखी ।
स्वाध्याय मे दिन-दिन कर दी रात,
रात को दिन कर डाला ।
क्लिष्ट-कठिन को सहल वनाने को
जमकर के किया कसाला,
और न सीखी कम
जो अनुभव की गलियाँ ही सिखलाती है—
कड़ुई-मीठी-फीकी-तीखी ।

वाधाएँ जो आई उनसे झेल-झगडकर
जय हासिल की,
प्रकृति, नियति के,
युग, समाज के,
बन्धु-वान्धवो के विरोध मे भी
अपनी ज़िद रख पूरी की
कई मुरादे अपने दिल की ।

दुनिया के थे क्षेत्र नही कम
जिनमे ले कुछ ठोस लक्ष्य मै जा सकता था,
ठोस काम कुछ कर सकता था,
जिनके होते ठोस नतीजे,
जिन्हे देख सतोष
मुझे अपनी वृद्धावस्था मे होता,
और मानते लोहा मेरा
सारे भाई और भतीजे ।

तभी अचानक
आई शामत,
'गई गिरा मति फेर'
और अब चार दशक के बाद
देखता हूँ अपने को—
केवल कवि हूं।
शब्दो को धुनता हूं,
बुनता हूँ, उधेडता हूँ सपने को।
वह तो कोई पागलपन का ही
क्षण होगा
जब शब्दो के प्रति आकर्षण
जागा होगा।
शब्द वायवी,
मृगजलवत् है,
पर अपनी छाया मे
कितने रूप, रग, आकृति का
धोखा भरे हुए है।
उनके पीछे कितना दौडा हूँ,
मरुथल मे पडे हुए पदचिन्ह बताएँ—
मेरी कृतियाँ कहकर उनको,
व्यग्य,
हवाएं दुनिया की,
मुझ पर करती है।

चार लाख हाथो ने जकडा 'मधुशाला' को
और निचोडा,
एक बूँद भी मदिरा टपकी ?
कागज की 'मधुबाला'
कब आलिगन करती ?

'निशा निमत्रण' किसे न मैने दिया,
पूत चिरई का भी, पर, पास न आया ।
'प्रणय पत्रिका' हजारो ने बाँची होगी,
किस भकुए ने उत्तर भेजा ?
'मिलन यामिनी' मे छाती पर सोती
पुस्तक !

इसी तरह माया दर्पण मे
छायाओ से छुई-छुअउअल
करते हुए बहुत दिन बीते ।
कविता बनकर, हाय, रह गए
कितने क्षण हम
जिन्हे भोगते,
जिनको जीते !

भारत की जिज्ञासु धरा पर
जन्म लिया था—
और अजाने जो उसने
सस्कार दिए थे
उन पर मेरा वश भी क्या था—
अपने सौ भौतिक सघर्षों के अन्दर भी
उस अज्ञात,
अदृश्य,
अभौतिक पर
सौ प्रश्न उठा करते थे,
जिसे ज्ञात,
साक्षात्,
अनुभवित करने को
ऋषियो ने अपनी आयु खपाई,

वेदो-उपनिषदो ने
जिसकी गाथा गाई ।

पर उनके भी द्वार
खोलने, खटकाने को
न था आत्मबल और न साहस
औ' न सहायक ही कोई मुझको मिल पाया-
अधिकारी शायद ही था मैं—
हाथ पकडकर जो मुझको
उन द्वारो से या
और किसी [illegible]च्छन्न मार्ग से
उस अन्तर्गृह [illegible] ले जाता
जहाँ रहस्य
रहस्य नही कोई रह पाता ।

विद्वानो से सुना
सार वेदो-उपनिषदो का
कुरुनन्दन-वत्स के लिए
दुहा कृष्ण ने जो
वह गीता ।

पन्ने-पन्ने पलटे उसके,
पक्ति-पक्ति पर दृष्टि गडाई,
शब्द-शब्द के अन्दर झाँका,
देख सका जो देखा मैने,
आँक सका जो मैंने आँका;
लेकिन कुछ भी समझ न पाया
उसका खाका ।

ज्ञान
अनुकरण से

आरंभ हुआ करता है;
पूर्ण, सृजन मे।

ग्राम-नगर से
शब्द जोडकर
एक नही दो-दो अनुकृतियाँ
प्रस्तुत कर दी,
अक्षर-अक्षर कठस्थल से रगड-रगड़,
गा और सुनाकर
अधकार की घडियाँ भर दी।

कहाँ ज्ञान की ज्योति,
कहाँ विश्वास अकपित,
कहाँ आरती श्रद्धा की
देदीप्यमान है?
यही खोजते,

और अनिश्चय—अविश्वास मे
लेते साँस बहुत दिन बीते।

कविता बनकर, हाय, रह गई,
ओ, तू भी तो,
री जनगीते,
नागर गीते!

मैं अपनी वृद्धावस्था मे
अपनी माटी की काया की
शक्ति-क्षीणता अनुभव करते,
हाथ-पाँव का दर्द झेलते,
अक्सर यह सोचा करता था—

क्या विडबना !
जीवन की अतिम श्रेणी पर
जबकि ज्ञान-अनुभूति समन्वित
किसी सूक्ष्म का,
किसी सत्य का
दर्शन मुझको हो जाना था,
तब शरीर की चिता मुझको व्याप रही है
उल्टे, अन्तर की पीडा भी,
आज बाहरी बनती जाती।
कोई लौकिक और पारलौकिक उपलब्धि
नही हो पाई—
अब क्या होगी—
गर्व मुझे कुछ जिसपर होता।
दोनो ही के लिए
किए सघर्ष, यत्न, श्रम—
कहूँ साधना कैसे इनको
शब्द-शब्द हो बिखर गए है,
जोड-जोडकर जिनको मैंने
अपनी कविता मान लिया है;
शायद, औरो ने भी माना।
पर, यह शायर गालिब के दिल के
बहलाने को
अच्छा खयाल भर निकला,
सिर्फ बहाना।

लोग बहुत-से
आकर मुझसे कह जाते है,
साफ-साफ, कुछ सकेतो से—
वे जवान, विद्वान्

सयाने, जाने-माने,
(झूठ भला किसलिए कहेंगे।)—
जो शब्दो का ताना-बाना
रचते आप रहे जीवन भर
उसको कविता
समझे जाने के दिन बीते!

कविता भी तो नही बन सकी
तेरी लौकिक और पारलौकिक मायूसी—
मिला खुदा भी नही विसाले सनम भी नही-
ओ, बक-बक थक
बीते, रीते!

यात्रांत

रथ
बड़े बीहड पहाडी,
बियाबानी, जगली,
जन-भरे, निर्जन
रास्तो पर से गुज़रता,
रात-दिन,
दिन-रात चलता,
कभी पीछे को न मुडता,
कही क्षण भर को न रुकता,
पौर पर आकर तुम्हारे
थम गया है।

अश्व चकनाचूर थककर
और रथ की चूल-चूल
हिली हुई, ढीली पडी है,

—काश उसका पथ-क्रदन
तुम श्रवण करते कहीं से !—
और तन-मन पीर की गठरी
बना बैठा हुआ मैं।

कुछ नहीं सामान मेरे साथ,
खाली हाथ
साँसो की लगामे।
कौन आशा,
कौन-सा विश्वास
पागल कौन-सी ज़िद
खींचती लाई यहाँ तक,
जानता बिल्कुल नहीं मैं।

इस समय आराम,
आश्वासन महज मैं चाहता हूँ।
द्वार खोलो,
भले ही बोलो न बोलो,
अभय मुद्रा से करो संकेत इतना,
ठौर पर आ ठीक ही
ठहरे हुए हो।

थके घोड़ो को
ज़रा-सा थपथपा दो।
और अपने हाथ का देकर सहारा
मुझे नीचे को उतारो—
किसी प्रत्याशित अतिथि-सा—
और अपनाते दृगो से
कहो, आओ, घर तुम्हारा !

कटती प्रतिमाओं की आवाज़

प्यार

तुम्हे जो कुछ
करना-कराना हो
किसी और नाम पर करना-कराना,
क्योकि अब मैंने
जीवन को थाहकर
यह जान लिया है
कि प्यार ईश्वर को ही किया जा सकता है
और ईश्वर ही करा भी सकता है
और शायद ईश्वर ही कर भी।

हाँ, यह भी जाना है
कि कभी ईश्वर मनुष्य
और मनुष्य ईश्वर बनता है।

महाबलिपुरम्

कौन कहता
कल्पना

सुकुमार, कोमल, वायवी, निस्तेज औ' निस्ताप होती ?
मैं महाबलिपुरम् मे
सागर किनारे पडी
औ' कुछ फासले पर खडी चट्टाने
चकित दृग देखता हूँ
और क्षण-क्षण समा जाता हूँ उन्ही मे
और जब-जब निकल पाता,
पूछता हूँ—
कौन कहता
कल्पना
सुकुमार, कोमल, वायवी, निस्तेज औ' निस्ताप होती ?

वर्ष एक सहस्र से भी अधिक बीते
कल्पना आई यहाँ थी
पर न सागर की तरगे
औ' न लहरे बादलो के
औ' न नोनखारे झकोरे सिंधु से उठती हवा के
धो-बहा पाए,
उड़ा पाए
पड़े पद-चिह्न उसके पत्थरो पर···
औ' मिटा भी नही पाएँगे
भविष्यत मे
जहाँ तक मानवी दृग देख पाते।

कल्पना आई यहाँ पर,
और उसके दृग-कटाक्षों से
लगे पाषाण कटने—
कलश, गोपुर, द्वार, दीर्घाएँ,
गवाक्ष, स्तंभ, मंडप, गर्भगृह,

मूर्तियाँ औ' फिर मूर्तियाँ, फिर मूर्तियाँ···
उन्मुक्त निकली
बद अपने मे युगो से जिन्हे
चट्टाने किए थी—
मूर्तियाँ जल-थल-गगन के जंतु-जीवो
मानवो की, यक्ष-युग्मो की अधर-चर,
काव्य और पुराण वर्णित
देवियो की, देवताओ की अगिनती—
स्मृति सँजोती
विफल होती,
शीश धुनती।

यहाँ वामन बन त्रिविक्रम
नापते त्रैलोक्य अपने तीन डग में,
और आधे के लिए बलि
देह अपनी विनत प्रस्तुत कर रहे है।
यहाँ दुर्गा
महिष मर्दन कर
विजयिनी का प्रचडाकार धारे।
एक उँगली पर यहाँ पर
कृष्ण गोवर्धन सहज-निःश्रम उठाए
तले ब्रज के गोप-गो सब शरण पाए,
औ' भगीरथ की तपस्या यहाँ चलती है कि
सुरसरि बहे धरती पर उतरकर,
सगर के सुत मुक्ति पाएँ।
उग्र यह कैसी तपस्या और सक्रामक
कि वन के हिंस्र पशु भी
ध्यान की मुद्रा बनाए।···
औ' बहुत कुछ घुल गया संस्कार बनकर

जो हृदय मे
शब्द वह कैसे बताए !

सोचता हूँ,
कौन शिल्पी
किस तरह की छेनियाँ, कैसे हथौडे लिए
कैसी विवशता से घिरे-प्रेरे
यहाँ आए कभी होगे
औ' रहे होगे जुटे कितने दिनों तक—
दिन लगन, श्रम-स्वेद के, सघर्ष के
शायद कभी सतोष के भी—
काटते इन मूर्तियो को,
नही—
अपने आप को ही।

देखने की वस्तु तो
इनसे अधिक होगे वही,
पर वे मिले
इस देश के इतिहास मे,
इसकी अटूट परपरा मे
और इसकी मृत्तिका मे
जो कि तुम हो,
जो कि मैं हूँ।
लग रहा
पाषाण की कोई शिला हूँ
और मुझपर छेनियाँ रख-रख अनवरत
मारता कोई हथौड़ा
और कट-कट गिर रहा हूँ···
जानता मैं नहीं

मुझको क्या बनाना चाहता है
या बना पाया अभी तक।
मैं कटे, बिखरे हुए पाषाण खडो को
उठाकर देखता हूँ—
अरे यह तो 'हलाहल', 'सतरगिनी' यह;
देखता हूँ,
वह 'निशा-सगीत', '··खेमे चार खूँटे',
क्या अजीब 'त्रिभंगिमा', इस भगिमा मे।
'आरती' उलटी, 'अँगारे' दूर छिटके,
यहाँ 'मधुबाला' विलुठित,
धराशायी वहा 'मधुशाला' कि 'चट्टाने' पडी 'दो'—
आँख से कम सूझता अब—
उस तरफ 'मधुकलश' लुढके पडे रीते,
"तुम बिन जिअत 'बहुत दिन बीते'।"

उभरते प्रतिमानों के रूप

तमारा तुखारा[1]

छोड यारावान[2] प्रात
कार से हम पॉच
जाते तिबलिसी[3] को—
चार[4] हम है
और एक दुभाषिया,
मध्याह्न मे काकेशिया की
झील पर आकर खडे है—
झील सबसे बडी,
नीलम-नील जल की,
नाम है सीवान जिसका,
घिरी टीलो से,
हरे जो झाडियो से,

---

१. यह कविता 'उभरते प्रतिमानों के रूप' मे 'सीवान किनारे' शीर्षक से ली गई है।
२ आरमीनिया प्रजातन्त्र की राजधानी।
३. जार्जिया प्रजातन्त्र की राजधानी।
४. श्री मन्मथ रे, श्री एल० एन० भावे, श्री के० के० नायक और लेखक।

झाडियाँ जो लदी फूलो, विविध रगी।
बीच मे है एक छोटा-सा जजीरा,
वृक्ष जिसपर खडे,
पीछे कई घर भी दिख रहे है,
और ऊपर एक चिडिया उड रही है;
इस जजीरे से कहानी
एक दु खदायी जुडी है।

यह सुरम्यस्थली
बनती पृष्ठभूमि न प्यार की जो—
प्यार जिसका अत होता त्रासदी मे—
तो मुझे आश्चर्य होता।
सुखद-सुदर सब
कही पर एक पीडा से जुडा है।
क्यो ?
नही यह भेद मानव पर खुला है।

उस जजीरे पर हुआ था मूर्त
यौवन, रूप, आकर्षण अनोखा;
इस किनारे प्रेम,
उसकी पिपासा, उसली विकलता,
पात्र को जो प्राप्त करने के लिए
सागर थहाती, लाँघ जाती पर्वतो को।
तट-जजीरे की नही थी बहुत दूरी।

प्यार का पथ कहाँ बाधा-हीन होता !
एक दुनिया का बखेडा, बना बेड़ा,
बीच आकर अड गया था।
आँख ओट, पहाड की है ओट—

दोनो चोट-खायो के दिलो मे
दर्द का अनुभव नया था।
और पहुँची एक दिन सीमा सहन की—
जिस जगह पर दर्द बन जाता दवा भी—
हवा का झोका गया कुछ कान मे कह,
"रास्ता है, चल सकोगे ?
तैर आधी रात को तट से जज़ीरे तक
प्रिया से मिल सकोगे ?—
दीप-लौ दीखे जहाँ पर,
तीर-से जाना वहाँ पर।"

और आधी रात को
चुपचाप बिस्तर से निकलकर,
पहुँच तट पर,
दीप लेकर,
बैठ जाती थी तमारा;
और आधी रात को
चुपचाप बिस्तर से निकलकर,
पहुँच तट पर,
कूद जल मे,
जूझ लहरो की अनी से,
लौ जहाँ होती
वही पर पहुच जाता था तुखारा।

और क्या होता वहाँ था ?
पाप होगा देखना या पूछना,
मेरा तुम्हारा।

इस तरह का मिलन
खलता मानवों के ही नही
नभ-तारको के भी दृगो को।
और देखो,
एक वे षड्यन्त्र रचने जा रहे हैं;
उन्हे रोको ! उन्हे रोको !

किस त्वरा मे
आज वह बेतेल डाले
दीप लेकर भाग आई।
रात बीती जा रही है,
दीप-बाती किस तरह जाए जगाई !
औ' तुखारा
जल-तरगो से उलझता
द्वीप का चक्कर लगाता,
फिर लगाता,
फिर लगाता,
फिर लगाता,
चूर थककर,
अधमरा-सा
फिर मरा-सा,
फिर मरा ही—
प्रेम-पथ का,
मृत्यु-पथ का, थकित और हताश राही-
दीप लौ क्यो दे दिखाई !

औ' तमारा
शेष जीवन
हर निशा मे

तेल भर-भर
दीप ले बैठी,
निराशा ले उठी,
आया न तट पर फिर तुखारा।

अब चुकी हैं बीत सदियाँ।

इस तरफ के लोग कहते,
नित्य आधी रात के सुनसान मे
लौ दीप की देती जजीरे पर दिखाई।
उस तरफ के लोग कहते,
नित्य आधी रात उठ-गिर
जब तरगे द्वीप-तट पर सिर पटकती
अख···तमा···र·· ह!
अख ··तमा ··र···ह!
शब्द देता है सुनाई।

झील तट पर एक नारी-मूर्ति
दीपक ले खडी है,
जो जगाती करुण स्मृतियाँ।

तुखारा का आश्वासन-गीत

मैं सौ सीमाएँ लाँघ
तुम्हे मिल जाऊँगा,
तुम रोना मत!

सीवान झील को घेरे
टीले खड़े हुए जो
एक-एक पर,

एक-एक पर लग जाएँ
औ' बहुत बड़े पर्वत-से भीमाकार बन,
तुम पार बसो;
मैं पर्वत पर चढ़-उतर
तुम्हे मिल जाऊँगा,
तुम रोना मत !

सीवान झील मे
आए ऐसी बाढ
कि वह इतना फैले, इतना फैले, इतना फैले,
इतना लहराए,
उफनाए,
दक्षिण जाकर गिरि अरारात[1] से टकराए,
मैं बसूं किसी गिरि घाटी मे;
मैं चढी झील को तैर
तुम्हे मिल जाऊँगा,
तुम रोना मत !

पर्वत से भी ऊँचे,
सागर से भी गहरे-चौड़े
होते परिवार-पडोसी
बीच खड़े जो हो जाते,
पर नही जानते वे
प्रेमी के कधो पर होते डैने;
मै चिडिया-सा उड
आसमान कर पार
तुम्हे मिल जाऊँगा,
तुम रोना मत !

---

१ आरमीनिया के दक्षिण मे एक पर्वत ।

यह पर्वत पर खुद जाएगी,
यह लहरो पर लिख जाएगी,
तारावाल इसको गाएगी,
जो प्रेम-कहानी
छिप-छिपकर
[illegible] की मैने चुबन से
[illegible] गुथी[1] तुम्हारी अलको पर
नयनो के कोर, कपोल,
अधर के कोनो पर,
देखो उसको,
सूने मे बैठ अकेले मे
अपने आँसू से धोना मत !
मै सौ सीमाएँ
लाँघ तुम्हे मिल जाऊँगा,
तुम रोना मत।

है बाधाएँ, कुछ औराएँ !
बाधाओ से
दुनिया हारी माना करती,
प्रेमी की दुनिया
तीन लोक से न्यारी है।
जो हमे सुमन-सा हल्का,
दुनिया को वह मन-सा भारी है।
अलको मे सघन बवडर,
नयनो मे प्लावन,
भू-कप हृदय मे हो तो भी—
हे मन-भावन—
सब कुछ विरुद्ध, सब युद्धोन्मुख;—

१ सम्बद्ध भू-भाग मे कौमार्य का प्रतीक।

मन्तव्य सृष्टि के
सारे साथ हमारे है—
विश्वास, तमारा, खोना मत !

मैं सौ सीमाएँ लाँघ
तुम्हे मिल जाऊँगा,
तुम रोना मत !

तुखारा का प्रेम-गीत

सीवान किनारे टीलो के
इन फूलो मे क्या है
जो इनको देख सदा
मै याद तुम्हे कर लेता हूँ।

तुममे क्या है —
केशो मे, अधर, कपोलो मे —
जो इन फूलो को देख सदा
मै याद तुम्हे कर लेता हूँ।

मुझमे क्या है—
आहो, आँसू मे, गीतो मे—
जो देख सदा इन फूलो को
मै याद तुम्हे कर लेता हूँ।

तुखारा का भाग्य-गीत

काकली से काकली उलझी हुई है,
और दुनिया है कि अलगाने चली है !

"बावली ! निज शक्तियाँ क्या तौल ली है ?"
?

आग ने भर आग ली है बाहुओ मे
बीच पडने वीचियाँ जल की चली है !

पगलियो ! निज शक्तियाँ क्या जाँच ली हैं ?'

भाग्य दो के एक होने को बदे थे,
क्यो बदलने को गगन से बेकली है ?

"तारको ! निज शक्तियाँ क्या परख ली है ?"

"परख ली है !"
"परख ली है !"
"परख ली है !"

तमारा का पश्चाताप-गीत

घर से आती,
दीप जलाती,
दीप न जलने पाता
जाता पहुँच तुखारा,
चट से हो जाता भिनसारा।
रात जले !
जब घर से आई,
दीप न लाई,
रूठ गया उस रैन तुखारा।
मना न फिर
गो हुई न मुझसे भूल दुबारा।

घर से आती,
दीप जलाती,
पूछ-पूछ बाती चुक जाती,
कहाँ तुखारा ? कहाँ तुखारा ? कहाँ तुखारा ?
और नही होता भिनसारा,
और नही होता भिनसारा,
और नही होगा भिनसारा !

तमारा का प्रतीक्षा-गीत

दिन काटे,
दिवसात प्रतीक्षा।

काटी
सूनी-चुप सध्याएँ,
रात प्रतीक्षा,

काटी
घडियाँ काली,
आधी रात प्रतीक्षा।

काटा
उत्तरार्द्ध रातो ने
त्रास—
उरास—
प्रभात प्रतीक्षा।

दिन काटे,
दिवसात प्रतीक्षा

तमारा का भाग्य-गीत

त्रासदी
बडे हल्के पॉवो से आई है।

तूफान-बवडर नही उठा,
ठडी आहो से
बाल-बाल उड गए कहाँ !
किसने देखी है बाढ उठी !
आँसू की बूँदो से
यौवन उस पार बहा।

भू-कप नही आया,
साँसो की धडकन से,
हैं नही चिन्ह को ईट,
महल इस भाँति ढहा।

मैंने न किसी से
अपनी व्यथा बताई है।

त्रासदी
बडे हल्के पॉवो से आई है।

०

०

परिशिष्ट—१

हरिवंशराय बच्चन की जीवन-क्रमणिका

१९०७ (२७ नवम्बर) —इलाहाबाद मे जन्म

१९२५ —इलाहाबाद से हाई स्कूल

१९२७ —श्यामा जी से विवाह

१९२९ —इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० ए०

१९३० —सत्याग्रह आदोलन मे सक्रिय भाग

१९३२ —'पायोनीयर' मे जिला कचहरियो के सम्वाददाता

१९३३ — अभ्युदय' के प्रबन्ध विभाग मे

१९३४ —अग्रवाल विद्यालय मे हिन्दी के शिक्षक

१९३६ (१७ नवम्बर) —श्यामा जी का देहावसान

१९३८ —इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अग्रेज़ी मे एम० ए०

१९३९ —बनारस विश्वविद्यालय से बी० टी०

१९३९ —इलाहाबादविश्वविद्यालयमेअनुसधानकार्य

१९४१ —इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे अग्रेजी अध्यापक के रूप मे नियुक्ति

१९४२ (२४ जनवरी) —तेजी जी से विवाह

१९५४ —केंब्रिज विश्वविद्यालय से डाक्टरेट

१९५५ (सितम्बर) —आकाशवाणी, इलाहाबाद मे प्रोड्यूसर

१९५५ (दिसम्बर) —विदेश मन्त्रालय मे विशेषाधिकारी

१९५९ (अगस्त) —पोयट्री बाईनियल मे भाग लेने के लिए भारतीय शिष्ट मडल के सदस्य के रूप मे

	बेल्जियम की यात्रा—व्यक्तिगत रूप से फ्रास, इटली, हालैण्ड की भी।
१९६६	—राष्ट्रपति द्वारा राज्य-सभा के सदस्य मनोनीत। सरकारी सेवा से अवकाश ग्रहण।
१९६६	—चौसठ रूसी कविताएँ पर सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार
१९६७	—शिक्षा मत्रालय की ओर से रूस, मगोलिया, पूर्वी जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया की यात्रा
१९६	—सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार विजेता के रूप मे रूस की यात्रा
१९६९	—हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा साहित्य वाचस्पति उपाधि प्रदान
१९६९	—दो चट्टाने (काव्य सग्रह) पर साहित्य अकादेमी पुरस्कार
१९६९	—दिल्ली प्रशासन साहित्य कला परिषद द्वारा सम्मानित और पुरस्कृत
१९७०	—पूर्वी जर्मनी की यात्रा
	—लोटस पुरस्कार (अफ्रो-एशियन राइटर्स कान्फ्रेस द्वारा प्रदत्त)

परिशिष्ट—२

बच्चन की रचनाओं के प्रथम संस्करण

तेरा हार (१९३२)	—रामनारायणलाल बुकसेलर, इलाहाबाद
बच्चन के साथ क्षण भर (सचयन) (१९३४)	—तारा प्रिंटिग वर्क्स, बनारस
मधुशाला (१९३५)	—सुषमा निकुज, इलाहाबाद
खैयाम की मधुशाला (१९३५)	—सुषमा निकुज, इलाहाबाद
मधुबाला (१९३६)	—सुषमा निकुज, इलाहाबाद
मधु कलश (१९३७)	—सुषमा निकुज, इलाहाबाद
निशा निमत्रण (१९३८)	—सुषमा निकुज, इलाहाबाद
एकात सगीत (१९३९)	—सुषमा निकुज, इलाहाबाद
आकुल अतर (१९४३)	—भारती भडार, इलाहाबाद
प्रारभिक रचनाएँ (कविताएँ)	(तेरा हार सम्मिलित)
पहला भाग (१९४३)	—भारती भडार, इलाहाबाद
दूसरा भाग (१९४३)	—भारती भडार, इलाहाबाद
सतरगिनी (१९४५)	—भारती भडार, इलाहाबाद
प्रारभिक रचनाएँ (कहानियाँ)	
तीसरा भाग (१९४६)	—भारती भडार, इलाहाबाद
हलाहल (१९४६)	—भारती भडार, इलाहाबाद
बगाल का काल (१९४६)	—भारती भडार, इलाहाबाद
खादी के फूल (१९४८) (सहलेखक सुमित्रानदन पत)	—भारती भडार, इलाहाबाद
सूत की माला (१९४८)	—सेट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद

मिलन यामिनी (१९५०)	—भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस
सोपान (सकलन) (१९५३)	—भारती भडार, इलाहाबाद
प्रणय पत्रिका (१९५५)	—सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद
धार के इधर-उधर (१९५७)	—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
मैकवेथ (१९५७)	—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
आरती और अगारे (१९५८)	—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
बुद्ध और नाचघर (१९५८)	—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
जन गीता (१९५८)	—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
ओथेलो (१९५९)	—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
उमर खैयाम की रुबाइया अनुवाद (१९५९)	—हिन्द पॉकेट बुक्स, दिल्ली
कवियो मे सौम्य सत (१९६०)	—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि सुमित्रानदन पत (सपादित) (१९६०)	—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
आधुनिक कवि (७) बच्चन (सकलन) (१९६१)	—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
नेहरू राजनीतिक जीवन चरित (अनुवाद) (१९६१)	—मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
त्रिभगिमा (१९६१)	—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
नये-पुराने झरोखे (निबध-सग्रह) (१९६२)	-राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
चार खेमे चौसठ खूँटे (१९६२)	-राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
६४ रूसी कविताएँ (अनुवाद) (१९६३)	—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
अभिनव सोपान (सकलन) (१९६३)	—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
डब्ल्यू० बी० ईट्स एण्ड ओकल्टिज्म (अंग्रेजी मे) (१९६५)	—मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

दो चट्टानें (१९६५) —राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
मरकत द्वीप का स्वर (ईट्स की कवि-
ताओं का अनुवाद) (१९६५) —राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
नागर गीता (अनुवाद) (१९६६)—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
बच्चन के लोकप्रिय गीत
(सकलन) (१९६७) —हिन्द पॉकेट बुक्स, दिल्ली
बहुत दिन बीते (१९६७) —राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
कटती प्रतिमाओं की आवाज़
(१९६८) —राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
उभरते प्रतिमानों के रूप
(१९६९) —राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
हैमलेट (अनुवाद) (१९६९) —राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
क्या भूलूँ क्या याद करूँ
(आत्म-चित्रण भाग-१)
(१९६९) —राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
कवि श्री बच्चन (सकलन)
(१९६९) —सेतु प्रकाशन, झांसी
भाषा अपनी भाव पराये
(अनुवाद) (१९७०) —राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
बच्चन के नाम पत के सौ पत्र
बच्चन · पत्रों मे (१९७०) —सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली
(१९७१) —राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
नीड का निर्माण फिर
(आत्म-चित्रण भाग-२) —राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
(१९७०)
बच्चन के नाम पत के दो सौ पत्र
(१९७१) —सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली
प्रवास की डायरी (पूर्वार्द्ध)
(१९७०) —राजपाल एड सन्ज, दिल्ली

परिशिष्ट—३

बच्चन-साहित्य पर प्रमुख आलोचनात्मक सामग्री

बच्चन निकट से —स० अजितकुमार ओंकारनाथ श्रीवास्तव
राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, १९६८

बच्चन—व्यक्तित्व और कवित्व —जीवन प्रकाश जोशी
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, १९६८

बच्चन का परवर्ती काव्य —डा० श्याम सुदर घोष
राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, १९६७

बच्चन—एक पहेली —चद्रदेव सिंह
हिन्दी प्रचारक प्रकाशन, वाराणसी, १९६७

लोकप्रिय बच्चन —स० प्रो० दीनानाथ शरण
साहित्य निकेतन, कानपुर, १९६७

बच्चन—एक पुनर्मूल्याकन —स० डा० दशरथ राज
प्रगति प्रकाशन, आगरा, १९६७

बच्चन—एक युगातर —स० नीरज नईमा खान
स्टार पब्लिकेशन, दिल्ली, १९६५

बच्चन—व्यक्तित्व और कृतित्व —स० बॉके बिहारी भटनागर
नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली, १९६४

हालावाद और बच्चन —प्रो० दशरथ राज
महाराष्ट्र राष्ट्र भाषा सभा,पुणे १९६३

साहित्य-सदेश (आलोचना मासिक)
बच्चन विशेषाक नवम्बर-दिसम्बर
१९६७ —स० महेन्द्र और विश्वभर 'अरुण'
साहित्य रत्न भडार, आगरा

लय (त्रैमासिक पत्रिका)
बच्चन अक : अप्रैल १९६६ —स० नीरज,
५७, मैरिस रोड, अलीगढ

० ० ०